



पूर्णं येन सुमेरु शृंग सदृश चैत्यं सुदे दीप्यते,  
 य कीर्तिं यजमान धम कथनं प्रस्फूर्जिता भाषते ।  
 येनैव स्वर्गात्कुर्वते जगत्त्रयं दमहाक्षीमेन दोषारिणा,  
 सोऽयं मंगल रूपं मुख्यं गणनं कुम्भस्थिरं नन्दतात् ॥ १ ॥



# हिगुल प्रकरण व सिद्ध प्रकरण

( हिन्दी अथ सहित )

श्लोक रचयिता  
 श्री. बिनयसार्गीर उपाध्यायजी  
 श्री. वारदराज्जीय ज्ञान मन्दिर, जयपुर



सशोधन एव परामशदाता  
 मागीलाल व्यास 'मयक'



पुस्तक प्राप्ति स्थान



श्री हित सत्क ज्ञान मन्दिर

मु० पो० घाणोराव (मारवाड़)



गोविन्दचन्द मेहता

गृहपति :

श्री श्वेताम्बर जैन छात्रावास

मु० पो० गुढाबालोत्तान  
स्टेशन :- जवाईवीध (राज.)



नागोडाजी तीर्थोद्धारक परम पूज्य १००८ श्री आचार्यविजय



हिमाचल सुरेश्वरजी महाराज साहेब

जन्म दि त १९६४

पद्मस वि० म १९८५

दीना वि म १९८०

आषाढ वि म २००१

## दो शब्द

यह अत्यन्त ही हर्ष की बात है कि मेवाड केसरी, नाकाड़ा तिर्योद्वारक-व्याख्यान वाचस्पति पू० आचार्य श्री हिमाचलपूरी-श्वरजी महाराज. सा. को आज्ञावर्ति पू० साव्वोजी महाराज श्री पुष्प श्री जो को विदुषी शिष्या पू० साव्वोजी श्री उद्यात श्री जो महाराज सा. ने ज्ञान पिपासु श्रद्धानुग्रो के लिये हिंगुल प्रकरण एवं सिंदूर प्रकरण के हिन्दो अनुवाद को सरल भाषा में अमृत कुंभ नामक पुस्तक छपवाकर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

ज्ञान ही मुक्ति का साधन है। इस दृष्टि से ऐसी पुस्तकों के सरल अनुवाद एवं व्याख्या अत्यन्त ही उपयोगी हैं। साव्वोजी श्री का प्रयास स्तुत्य है।

आप श्री ने और भी अनेक पुस्तकें प्रकाशित करवाई हैं। इन पुस्तकों को सरल भाषा में व्याख्याएँ यह प्रमाणित करती हैं कि साव्वोजी श्री को साहित्यिक रुचि भी सराहनीय है। जैन धर्म के सिद्धान्तों को सरल भाषा में प्रस्तुत करवाना आज के युग की माँग है। प्रभु-महावीर के सिद्धान्तों का प्रचार जनता में करना नितान्त आवश्यक है।

इस दिशा में साव्वोजी श्री का प्रयास उपयोगी ही नहीं अपितु सराहनीय है।

मैं साव्वोजी श्री को इस सफल पुस्तक प्रकाशन के लिये हार्दिक बधाई देता हूँ।

आपका शुभ चिन्तक  
गोविन्दचन्द मेहता  
गृहपति

पुज्य पुन्यश्रीजी महाराज साहेब



जन्म तनादरो (मेवाड)  
दीक्षा दुजाणा (मारवाड)



## दानदाताओं की सूचि

---

- ८०१) जन श्री सघ सरथ ( बड़ी दुकड़ी )  
 १०१) ,, ,, ( छोटी दुकड़ी )  
 १०१) श्रीमान तिलोकचन्दजी साहव जन सरथ  
 १०१) ,, बाबूलालजी चुन्नीलालजी मेगलोर  
 १०१) , भैरवमलजी मगलजी जाकोर  
 १०१) , त्रिलोकचन्दजी की बहिन  
 ५१) , बाबूलालजी जालोर  
 ५१) गडा उपासरा की बहनो की तरफ से



## धन्यवाद !

जिन महानुभावो ने इस पुस्तक के प्रकाशन में आर्थिक सहायता प्रदान की है उसके लिये वे बघाई के पात्र हैं। ज्ञान ही मुक्ति का साधन है। पुस्तकें ज्ञान के दीपक हैं। ऐसे पुनीत कार्य में जिन महानुभावों ने आर्थिक सहायता दी है वह प्रशसनीय हैं। उन्हें हार्दिक धन्यवाद !

## पुज्य उद्योतश्रीजी महाराज साहेब



जन्म दि म १९८८  
दीक्षा दि स २००६

ग्रहमन्त्राचार्य  
भाणपुरा ( मेवाड )



॥ ॐ ह्रीं महं नम ॥

## श्री हिंगुल प्रकरण

श्री मल्ली वामुपूज्यश्च, जगदानददायक ।

कल्पवृक्षोपमोभूया-त्मुपपततिमिद्वये ॥ १ ॥

अथ—जगत को आनंद देने वाले तथा कल्पवृक्ष के समान  
ऐसे श्री गुरुपूज्य प्रभु सुख की सिद्धि को देने वाले बने ॥ १ ॥

हिंगुल प्रकरोऽयं च, बालारुणो विचक्षणा ।

तकयतीति य दृष्ट्वा, पदमप्रभो मुदेऽस्तुम ॥ २ ॥

अथ—जिनको देखने से यह हिंगुल के समूह है तथा उदित  
होता हुआ मूल है, इस प्रकार पण्डित तक करते हैं ऐसे श्री पदम्  
प्रभु हृदय के लिए बने ॥ २ ॥

जनयति यथा पुमान्, भाग्य स्वोपाजित यथा ।

अथान् कुर्वति विद्वानो, गुणाद्विस्तरता भवेत् ॥ ३ ॥

अथ—मित्रों पत्नों का जन्म देती है, बिन्नु उनका जैसा  
भाग्य (पौर्णि) फलदा है, उसी प्रकार विद्वान् अथ बनाते हैं  
बिन्नु कामें रत हुए मृगों से ही उनका विस्तार होता है ॥ ३ ॥

गुपान्ने दीप्तिरुद्विष्टा, गुपान्नेदीप्तिरुन्वना ।

गुपान्ने दीप्तिरुन्मीश्री, गुपान्नेदीप्तिरुद्विष्टाम् ॥ ४ ॥

अथ—गुपान्ना का दीप्ति विष्टा, गुपान्ना का दीप्ति उन्वना,  
गुपान्ना का दीप्ति उन्मीश्री, तथा गुपान्ना का दीप्ति उद्विष्टा  
शामा की दीप्ति सामा है ॥ ४ ॥

कुपात्रेऽनर्थकृद्विद्या, कुपात्रेऽनर्थकृतकला ।

कुपात्रेऽनर्थकृन्मैत्री, कुपात्रेऽनर्थकृद्दनम् ॥ ५ ॥

अर्थ—कुपात्र को दी हुई विद्या, अनर्थ करने वाली है ।  
उसी प्रकार कुपात्र को दी हुई कला भी अनर्थ करने वाली है  
कुपात्र के साथ की हुई मित्रता भी अनर्थ करने वाली है, उसी  
प्रकार कुपात्र को दिया हुआ धन भी अनर्थ करने वाला है ॥ ५ ॥  
नास्ति न्यायसमं सत्यं, नास्ति धर्मसमः सखा ।

नास्त्युद्यमसमं मित्र, नास्ति भाग्यसमं धनम् ॥ ६ ॥

अर्थ—न्याय के समान कोई सत्य नहीं धर्म के समान कोई  
दूसरा मित्र नहीं, उद्यम के समान कोई साथी नहीं तथा भाग्य  
के समान कोई धन नहीं ॥ ६ ॥

देहस्य भूषणं प्रीतिः, सुमन्त्री राज्यभूषणम् ।

रूपस्य भूषणं विद्या, सद्धाम्यं नरभूषणम् ॥ ७ ॥

अर्थ—शरीर का भूषण प्रीति है, राज्य का सुयोग्य  
मंत्री, रूप का भूषण विद्या है तथा पुरुष का भूषण उद्यम  
धर्म के प्रति लगन है ॥ ७ ॥

देहस्य दूषणं तंद्रा, कुमन्त्री राज्यदूषणम् ।

रूपस्य दूषणं जाड्यं-मर्धाम्यं नरदूषणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—आलस्य शरीर का दूषण है, अयोग्य मंत्री राज्य का  
शत्रु है, मूर्खता रूप का शत्रु है, अधार्मिकता पुरुष का शत्रु  
है ॥ ८ ॥

पुण्याच्च धनमाप्नोति, कीर्तिमिहैति तद्धनात् ॥ १८ ॥  
 परत्र स्वर्गसौख्यं च, ह्यपवर्गं क्रमात्तत ॥ १९ ॥

अर्थ—पुण्य से प्राणी को धन मिलता है तथा धन से इस (पृथ्वी पर) सारा मे कीर्ति प्राप्त होती है, पर लोक मे स्वर्गीय सुख मिलता है तथा बाद मे मोक्ष भी प्राप्त होता है ॥ १९ ॥  
 सम्यगाराविनो वर्गं, प्रथमो यैश्च जन्तुभिः ।  
 तेषां साध्यास्त्रयो वर्गाः, अनुक्रमेण मन्त्रिवत् ॥ २० ॥

अर्थ—जिस मनुष्य ने धर्म अथवा काम मार्ग में से प्रथम धर्म की भलि प्रकार आराधना की है, उसे कर्म से अथवा काम मोक्ष अपने आप मन्त्री की भाँति प्राप्त हो जाते हैं ॥ २० ॥

प्रियं ब्रूहि प्रियं कुर्यात्, प्रियमेवामृतं परम् ।

प्रियवचं प्रदानेन भवति प्राणिना प्रिया ॥ २१ ॥

अर्थ—हे प्राणी । तू प्रिय बोल तथा प्रिय लगने वाले पापों को कर ब्यापि प्रिय उत्प्लुष्ट शरीर के समान है और प्रिय वचन दानों मे लोग प्रिय बन जाते हैं ॥ २१ ॥

विद्याममे नास्ति शरीरभूषणं,

निंदासम नास्ति शरीरदूषणम्,

तृष्णासमा नास्ति परा च चिन्ता ।

कने गोपशास्ते समता परा न ॥ २२ ॥

अर्थ—विद्या मे समान अथवा कोई शरीर का भूषण नहीं, उम्मी प्रकार निंदा मे समान शरीर का अथवा कोई दुष्ण नहीं तृष्णा मे समान कोई बड़ी चिन्ता नहीं तथा कल्पे मे समान उत्प्लुष्ट कोई समता नहीं ॥ २२ ॥

शब्दोरूपं रसोगंधः, स्पर्शो भोगोहि पंचधा,

किंपाकफलवद्भुजात्वा, दूरे यांति मनीषिणः ॥ १३ ॥

अर्थ—शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्शना भेदों से भोग पांच प्रकार के हैं। उसको किंपाक वृक्ष का फल तुल्य जानकर सज्जन दूर जाते हैं ॥ १३ ॥

संतोषः परमं सौख्यं, संतोषः परमामृतम् ।

संतोषः परमं पथ्यं, संतोषः परमंहितम् ॥ १४ ॥

अर्थ—संतोष ही परम सुख है, संतोष. परम अमृत है, संतोष ही परम पथ्य है तथा संतोष ही परम हित है ॥ १४ ॥

स्थानानि चाष्टादश किल्बिषस्य,

तथैव सप्त व्यसनानि विश्वे ।

त्याज्यानि भव्यैर्भवदुः खहेतुविशेषतः ।

पापमतिः प्रमोच्या ॥ १५ ॥

अर्थ—संसार रूपी सागर में रहने वाले मनुष्य को इस दुनियां में अठारह पापस्थानों को उसी प्रकार ही सात व्यसनों को त्यागना तथा संसार दुख के समान ऐसी पाप रूपी बुद्धि को विशेष प्रकार से त्याग देना चाहिए ॥ १५ ॥

धार्यः प्रबोधो त्वदि पुण्यदानं, शीलं सदांगीकरणीयमेव ।  
तर्प्यतपोभावनयैवकार्या, जिनेन्द्रपूजागुरुभक्तिरुद्यमः ॥ १६ ॥

अर्थ—हृदय में अच्छी वाणी को धारण करना, पुण्य दान करना शील व्रत को सर्वदा धारण करना, तप तपस्या करना तथा भावना से जिन पूजा करना, गुरु भक्ति करना और उसी प्रकार उद्यम भी करना चाहिए ॥ १६ ॥

## प्राणातिपातप्रक्रमः

यो दधाति तृणवक्त्रे, प्रत्यनीकोऽपि मानवी,  
सोऽवध्य सता लोके कथं वध्यास्तृणादना ॥ १ ॥

अर्थ—जो मनुष्य तृण भक्षण करने वाला शत्रु है। वह सज्जनो के मारने लायक नहीं होता है तो तृण भक्षण करने वाले (पशुओं) को कैसे मार सकते हैं ॥ १ ॥

प्रमादेन यथा विद्या, कुशीलेन यथा धनम् ।  
कपटेन यथा मैत्री, तथा धर्मो न हिंसया ॥ २ ॥

अर्थ—प्रमाद से जैसे विद्या नहीं आती दुष्ट आचरण से जैसे धन नहीं आता तथा कपट से जैसे मित्रता नहीं होती उसी प्रकार हिंसा से धर्म नहीं हो सकता ॥ २ ॥

शिला समधिस्त्वाश्च, निमग्नति जलातरे ।  
हिमा श्रिताश्च ते तद्वत् समाश्रयति दुर्गतिम् ॥ ३ ॥

अर्थ—जिस प्रकार पत्थर पर चढ़े हुए मनुष्य पानी में डुबते हैं उसी प्रकार हिंसा से घाश्रित प्राणी दुर्गति में जाते हैं ॥ ३ ॥

लावण्यरहित रूप, विद्यया वर्जित वपु ।

जलव्यक्त सरोभाति, तथा धर्मो दयाविना ॥ ४ ॥

अर्थ—जिस प्रकार सुंदरता बिना रूप की शोभा नहीं, विद्या बिना शरीर की शोभा नहीं तथा जल बिना तालाव की शोभा नहीं उसी प्रकार दया बिना धर्म की शोभा नहीं होती ॥ ४ ॥



## मृषावाद प्रकरण

संध्याभर रागवन्मिथ्या, वचनं कथमुच्यते ।

प्रतीतिभगं कृच्छात्र, परत्र दुःखकारणम् ॥ १ ॥

अर्थ—संध्याकाल के बादलों के रंग के समान मिथ्यावचन क्यो बोलना चाहिए । क्योकि वे इस लोक मे विश्वास को भंग करने वाले परलोक मे दुःख का कारण है ॥ १ ॥

याऽरण्ये रोदनात्सिद्धिः, र्यासिद्धिः क्लोवकोपनात् ।

कृतघ्नसेवना त्सिद्धिः सासिद्धिः कूटभाषणात् ॥ २ ॥

अर्थ—वन मे जाकर भटकने से जो सिद्धि होती है तथा नपुंसक के क्रोध से जो सिद्धि हाती है, वही सिद्धि झूठ बोलने से होती है ॥ २ ॥

अग्निनासिच्यमानोऽपि, वृक्षोवृद्धिं चाप्नुयात् ।

तथासत्यविना धर्मः, पुष्टिं नायाति कर्हिचित् ॥ ३ ॥

अर्थ—जिस प्रकार अग्नि से जला हुआ वृक्ष बढ़ता नही उसी प्रकार सत्य के बिना धर्म की किसी समय भी पुष्टि नही होती ॥ ३ ॥

असत्यवक्तुर्भुवि पक्षपातं, कुर्यान्न विद्वान् किलसंकटेऽपि ।

तेन ध्रुवं हि वसुराजवत्स, इहापवादं नरकं पुरत्र ॥ ४ ॥

अर्थ—विद्वान मनुष्य संकट आने पर भी वे पक्षपात कृते नही क्योकि इससे वसुराजा की तरह इस लोक मे उनकी बुराई होती है और परलोक मे नरक भोगी होते हैं ॥ ४ ॥

## अदेत्तादानं प्रकरण

कातराणां यथा वयं, वध्यानां सतेति यथा ।  
न विश्वासस्तथा लोके, नृणामदत्तहारिणाम् ॥ १ ॥

अथ—डरपोक का जिस प्रकार घय तथा वध्या के जिस प्रकार सत्तान नही हाती उसी प्रकार इस दुनिया में चोरी करने वाले का विश्वास नहीं होता ॥ १ ॥

कुक्षि शाकेन पूर्यते, यदि स्त्रीक घनाजनम् ।  
परनाऽदत्तमादद्या, द्यत स्याद्भूपतेभ्यम् ॥ २ ॥

अथ—थोड़ी कमाई होने पर सिर्फ शाक खाकर भी, पेट भर लेना चाहिए किंतु जहाँ राजा का भय होता है, ऐसा चोरी नहीं करनी चाहिए ॥ २ ॥

अदत्तं धनमादद्या, त्मुखलिप्सुहिमानव ।  
समद्योदु वमाप्नुयान् मद्रुचचोरवत्किञ्च ॥ ३ ॥

अथ—सुख चाहने की इच्छा करने वाले मनुष्य को चोरी का धन नहीं लेना चाहिए । क्योंकि उसको मद्रुच चोर की तरह तुम्हें दुख मिलता है ॥ ३ ॥

अनिष्टं चचरे धूर्तं स्वामिद्रोही नरेषु च ।  
अनीष्टादयनिष्टं च, अदत्तमपलक्षणम् ॥ ४ ॥

अथ—पक्षिया में घुवड पक्षी अनिष्ट है तथा मनुष्यों में स्वामी से शत्रुता रखने वाला अनिष्ट है उसी प्रकार कुलक्षण में चोरी अनिष्ट से भी अनिष्ट है ॥ ४ ॥

माऽदत्तं हि गृहाण वस्तु यदि चेत्तन्नास्ति यदद्भ्युज्यते,  
 धैर्यं धेहि तथापि पक्षिभिवहा नीरं लभते स्थले ।  
 दत्तं येन वपुः स एव भुवि नो चितन करिष्यत्यहो,  
 का वार्ता खलु ताः समग्र रचना चिन्ता च तस्मिन् स्थिता ॥ ५ ॥

अर्थ—हे प्राणी ! तू चोरी नामक अवगुण ग्रहण मत कर,  
 अगर तेरे पास कोई चीज नहीं हो तो जो चीज तेरे पास हो  
 उसी में धैर्य कर । क्योंकि जिस प्रकार पक्षियों के जीने के लिए  
 हर स्थान पर जल रख दिया जाता है । ज्यादा क्या कहना,  
 जिसने शरीर दिया है वही जगन में अपनी फिकर करेगा और  
 सारी रचना तथा चिन्ता उसी में ही रही हुई है ॥ ५ ॥ ॐ

## मैथुन प्रकरण

स्त्रीलुब्धो जगति यश्चा, ऽत्यजद्यशस्तु तं चनरम् ।  
 दासीलुब्धया यथा मुंजो, ऽपकीर्त्या गीयते न किम् । १ ।

अर्थ—जो मनुष्य जगत में स्त्रियों से मोहित है उन मनुष्यों  
 के यश त्याज्य है । क्या दासी से मोहित मुंज राजा की अप-  
 कीर्ति नहीं हुई ? अर्थात् (हुई) ॥ १ ॥

अन्तर्दुष्टामुखेमिष्टा, अनिष्टाका अतः परम् ।

विपवत्तलोवत्याज्या, ज्ञानिभिः सुखकामिभिः ॥ २ ॥

अर्थ—दिल में दुष्टता तथा मुख से मीठी ऐसी स्त्री से दूसरी  
 कौनसी वस्तु अनिष्ट है । उसी प्रकार मुख की इच्छा करने वाले  
 ज्ञानी भी जहरी बेल को तज देते हैं ॥ २ ॥

उग्रसभोगत सूरि-कैंतों हि नरकें गता ।

स्वर्गं गत । प्रदशोच, - तत्र, सवरकारणम् ॥ ३ ॥

अथ—सूरिकता उग्रसभोग से नरक में गई है और प्रदेशी राजा स्वर्ग में गये हैं । उसमें सवर कारण रूप है ॥ ३ ॥ -

(सवर—कर्मों का भ्रान्त रोकना) ।

अंत श्यामा बहि श्यामा, रक्षाया गुटिकाइव ।

बहिर्दधति सौंदर्यं-मतस्ताभस्मराशय ॥ ४ ॥

अथ—जो स्त्रियाँ राख की गोली के समान अंदर और बाहर श्याम होती हैं । फिर बाहर से सुन्दरता को धारण करती हैं किन्तु अन्दर से तो ऊपर के खीरे के समान हैं ॥ ४ ॥

श्रीमत्कोणिकराट् च चेटकनृपे साक महत्सगर,

चक्राण क्लिकामकेलिकलित पद्मावती प्रेरित ।

भोगासक्तमना नृपो मणिरथो भ्रात्रासम चाऽकरोत्,

द्रोह मोहवशात्परतु तदनु प्राप्त फलं कीदृशम् ॥ ५ ॥

अथ—पद्मावती से प्रेरित तथा काम थोड़ा से युक्त हुए ऐसे श्री कोणिक राजा ने चेडा राजा के साथ महामुद्ध किया मोह वश भोगा से आसक्त जिनका मन ऐसे मणिरथ राजा के भाई के साथ विद्रोह किया किन्तु उसके बाद उसको बर्सा फल मिला ॥ ५ ॥

## परिग्रह प्रकरण

प्रमेहिनां विषं सर्पि-मैथुनंचजुरोगिणाम् ।

तद्वन्निश्शेषजंतूनां, कालकूटः परिग्रहः ॥ १ ॥

अर्थ—प्रमेह के रोग वाले के लिए घी जिस प्रकार विष के समान है तथा आंख के रोगियों के लिए जिस प्रकार मैथुन विष के समान है उसी प्रकार सभी प्राणियों के लिए परिग्रह विष के समान है ॥ १ ॥

यथाब्धेर्जलविदूनां, संख्यानैवात्र लभ्यते ।

तथैव धनलुब्धानां, दुःखमानं न दृश्यते ॥ २ ॥

अर्थ—जिस प्रकार इस जगत में समुद्र के पानी की बूंदों की संख्या मिलती नहीं उसी प्रकार धन के लोभियों के दुःख का प्रमाण नहीं दिखाई देता ॥ २ ॥

अशुष्कं यदि वाशुष्क, मग्निः किं गणयेत् कदा ।

परिग्रहरतस्तद्वन्, न जानते परं निजम् ॥ ३ ॥

अर्थ—अग्नि क्या गीला या सूखा, गिनती नहीं ? उसी प्रकार परिग्रह से आसक्त हुआ मनुष्य अपना व पराया नहीं जान सकता ॥ ३ ॥

शीतज्वरीवशीतेन, वस्त्रावृत्तोऽपि पीड्यते ।

परिग्रही घनासक्तः, पीड्यते घनतृणया ॥ ४ ॥

अथ—जिस प्रकार ठण्डे शीत बुखार वाले मनुष्य को बहुत कपड़ा से ढकने पर भी दुखी ही रहता है, उसी प्रकार धन का लोभी परिग्रह धारो मनुष्य धन की तृष्णा से दुखी होता है ॥ ४ ॥

गिर्यारोहणता समुद्रतरण देशाटनासेवन,  
पाताले विवरे प्रवेशकरण निःशकमित्यादिकम्  
य कुर्याच्च परिग्रहैरुहृदयश्चेष्टामनेकामिह,  
मृत्वेतो नरकावटेषु गमन चक्री सुभूमोऽकरोत् ॥ ५ ॥

अथ जिस प्रकार सुभूम चक्रीय परिग्रह से घासक्त होकर पर्वत पर चढ़ने की, समुद्र में तरने की देशाटन करने की, पाताल व भोयरा में प्रवेश करने की चेष्टा की उसी प्रकार वह मृत्यु पाकर नरक में गया ॥ ५ ॥

## क्रोध प्रकरण

दण्डमुष्टि प्रहाराद्यनयन्ति करोत्यनेकश ।

भूतावेष्टितवल्नोके, कोपयुक्तो हि मानव ॥ १ ॥

अथ—क्रोध से भरा हुआ मनुष्य दुनिया में अनेक प्रकार से शिना विचार से दण्ड मुष्टि प्रहार आदि अनेक प्रहार करी अनय करता है ॥ १ ॥

दुर्गति प्रापणो पक्षो, विपक्षः शुभकर्मणाम् ।  
सपक्ष आपदः क्रोधः, सकेनाद्रियते ततः ॥२॥

अर्थ—दुर्गति की प्राप्ति में पक्ष करने वाला, शुभ कार्यों में शत्रु के समान आपदाओं की सोचत करने वाला जो क्रोध है उसको कौन अंगीकार करे ? ॥ २ ॥  
ज्वलद्बलवद्भाति, कायः प्रायोऽतिकोपिनः ।

मुखे वायांतरे दाहः, सर्वेषां भीमदर्शनः ॥३॥

अर्थ—अत्यन्त क्रोधी मनुष्य का शरीर प्रायः कर मुड़े हुए बल के समान होता है । मुख में विष होता है तथा अन्दर अग्नि समान दाह वाला ऐसा वह भयंकर दर्शन वाला होता है ॥ ३ ॥

आकरः सर्व दोषाणां, गुणानां च दवानलः ।  
संकेतोऽखिलकष्टानां, क्रोध स्त्याज्यो मनीषिणा ॥४॥

अर्थ—सभी प्रकार दोषों की खान के समान तथा गुणों को जलाने में दवानल के समान तथा सभी दुखों को संकेत रूप ऐसा क्रोध बुद्धिमान को तजना चाहिए ॥ ४ ॥

क्रोधाभिभूतपुरुषा नरके व्रजेयु-स्तत्रापि  
ताडननिबन्धनमारणोत्थम् ।

दुःखं घनं च सहनं कृतकर्मणां च,  
श्रीकृष्णवद्भगवताः समुपार्जयति ॥५॥

अथ—शोध से पराभव पाये हुए मनुष्य नरक में जाते हैं वहाँ ताड़न बधन, वे मारण आदि से उत्पन्न हुए दुःखें देते हैं। और उसी प्रकार मनुष्यों का समूह श्री कृष्णजी की तरह किये हुए कर्मों को भोगता है ॥ ५ ॥

## मान प्रकरण

य स्तब्धो गुरुणा साक-मन्यस्य न मनः कुत ।  
न छाया ये न लाभाय, मानो कथेरवन्तृणाम् ॥१॥

अर्थ—जो मानो मनुष्य गुरु के समीप अवकट से रहता है तब तो दूसरों के सामने ममने की तो बात ही क्या करनी ? अतः इस प्रकार का मानो मनुष्य कथेर के वृक्ष के समान मनुष्यों की छायादायक या लाभदायक नहीं हो सकता ।

स्याणुर्वा पुरुषो वाज्य दृष्टवेति तर्कयतियम् ।  
स मानो दूरतस्त्याज्यो नम्रा दिगुणवर्जनात् ॥२॥

अर्थ—जिसको देखने से ठूठ है या पुरुष । इस प्रकार का मनुष्य तर्क करते हैं । ऐसे नम्रादिबंशुणों से रहित हुए मानो व्यक्ति का दूर रहो ॥ २ ॥

गिधा लभते नो मानो, विद्यामीयान्न कहिचित् ।  
विनयादिक्क्रियाद्यून्य, स्तम्भवत्स्तम्भता गत ॥३॥



अर्थ—विनय की क्रिया से शून्य हुआ तथा स्वभ की तरह स्तब्धता प्राप्त करने वाला ऐसा अहंकारी मनुष्य शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता तथा किसी समय भी विद्या प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

अरण्यजं तरोः पुष्पं, समुद्रांभश्च शीतलम् ।

लावण्यं दंभिना तद्वन्मानिमानं विरर्थकम् ॥४॥

अर्थ—जिस प्रकार वन में पैदा हुआ पुष्प निरर्थक है समुद्र में रहा हुआ शीतल पानी निरर्थक है तथा कंकटो को सुन्दरता निरर्थक है । उसी प्रकार घमण्डी का घमण्ड भी निरर्थक है ।

धात्रा दत्तं मानवत्यां लघुत्वं

मानोन्मत्तो रावणे दुर्मतित्वम् ।

दर्पोत्कृष्टे कोणिके दुर्गतित्वं

दुष्टान्मानात्सङ्गतिः केन लब्धा ॥५॥

अर्थ—जिस प्रकार मानवती को देव ने लघुता दी तथा अहंकार से उन्मत्त हुए रावण को दुर्गति दी कोणीक राजा को दुर्गति दी उसी प्रकार ऐसे दुष्ट मानी को कौन सुगति दे (कोई नहीं देता) ॥ ५ ॥

# १ - माया प्रकरण

मायोत्पत्तादविश्वासांमुक्तामृतोऽपि मानुष  
परमेष्ठप्रवेश च, नाप्नुयात् श्वानवत्सदा ॥१॥

अर्थ—मनुष्य से मीठा वचन बोलने वाला ऐसा मनुष्य कपट से उत्पन्न हुए अविश्वास से हमेशा कुतरे के समान दूसरे के घर में प्रवेश पा नहीं सकता ॥ १ ॥

बधना पठित शास्त्रं, तदनर्थेयं केवलम् ।  
हरिभद्रस्य शिष्याणां, फलं किमुत न श्रुतम् ॥२॥

अर्थ—कपट से पढ़ा हुआ शास्त्र केवल अनर्थ ही करेगा क्योंकि उसने श्री हरिभद्राचार्य महाराज के शिष्या को जो फल मिला वह आपने शास्त्रों में पढ़ा होगा ॥ २ ॥

मायया यत्तपस्तप्त, महारत्नेन साधुना ।

स्त्रीवेदो ह्यर्जितस्तेन, भुक्तो मल्लीभवेच सः ॥३॥

अर्थ—महात्मा साधु ने भी जब कपट से तपस्या की थी उससे उसको स्त्रीवेद उपार्जन किया और वह स्त्रीवेद उसको श्री मल्लीनाथ त्रिशूल के भय में भागता पड़ा ॥ ३ ॥

दामीपुनः पुनरपि नृवंशमानोऽपि दार,  
दासपुत्रश्च धिक्त्वा पदुन्मत्तानि निशमान समानान् ।

मायाया हेतुरत्र भव सुगुणनिधे भव्य मायाविरक्तो,  
माया संसारमूलं प्रणिजगदुरिति स्वस्तिकारा जिनेन्द्राः ॥४॥

अर्थ—लोगों से नमस्कार करवाता उत्तम रूपवाला ऐसा कपील 'तु दासी पुत्र' तुझे धिक्कार है । इस प्रकार कहकर क्या तुने स्त्री को त्यागा नहीं ? आखिर उसने तो तुझे त्यागा नहीं । तथा पंडित लोगों के वचन से चारों ओर से निंदा पात्र हुआ है ? इसी प्रकार होने का कारण माया ही थी इसलिए है उत्तम गुण का भण्डार भव्य मनुष्य तू माया से (कपट से) विरक्त था क्योंकि माया संसार का मूल है इस प्रकार कल्याणकारी श्री जिनेश्वर प्रभु ने कहा है ॥ ४ ॥

## लोभ प्रकरण

स्थले चरेच्च वोहित्यं, शिलायामुदयेत्कजम् ।  
लभेत्कं मृगतृणातस्तदा हि लोभतः सुखम् ॥१॥

अर्थ—यदि जमीन पर जहाज चले, पत्थर पर कमल उगे तथा मृग-तृणा से यदि पानी मिले तो लोभ से सुख मिल सकता है ॥ १ ॥

सर्पोऽनिष्टोऽथवा लोभो, द्वयोर्लोभस्त्वनिष्टकः ।  
दशेच्च मर्दितः सर्पो, लोभो दशति सर्वदा ॥२॥



## राग प्रकरण

मुच्यते शृङ्खलाबद्धो, नाडीबद्धोऽपि मुच्यते ।

न मुच्यते कथमपि, प्रेम्णा बद्धो निरर्गलः ॥ १ ॥

अर्थ—सांकल से बंधा हुआ प्राणी भी पहुँचाया जाता है ।  
उसी प्रकार डोरी से बंधा हुआ प्राणी भी मुक्त हो सकता है  
किन्तु प्रेम से बंधा हुआ प्राणी किसी प्रकार से भी मुक्त नहीं  
हो सकता ॥ १ ॥

भर्तुर्विरहतो नार्यः, प्रविशत्यनलांतरे ।

स्वेच्छया च सहर्षेण, तत्र प्रेमप्रपंचकः ॥ २ ॥

अर्थ—पति के विरह से स्त्री अपनी इच्छा से हृषं सहित  
अग्नि में प्रवेश करती है, उसमें भी प्रेम का प्रपंच है ॥ २ ॥

मनस्तत्र वचस्तत्र, जीवस्तत्रैव संवसेत् ।  
नेत्रावलोकनं तत्र, रागो यत्रोपतिष्ठते ॥ ३ ॥

अर्थ—जहाँ राग है वहाँ मन, वचन और जीव बसा हुआ  
रहता है, तथा आँखों की दृष्टि भी वही रहती है ॥ ३ ॥

रागिणिगुणता पश्येः द्वैगुण्य हि विरक्तके ।

रागीगुणावगुणंच, नपरीक्षति कर्हिचित् ॥ ४ ॥

अर्थ—रागी मनुष्य रागी के समान ही गुण देखता है तथा  
विरक्त के समान अवगुण को देखता है । वह रागी मनुष्य  
किसी भी दिन गुण व अवगुण की परीक्षा करता नहीं ॥ ४ ॥

पय । पोतो नोरे तरति तपन शीतकिरण,  
 दघात्येव नित्ये किमु कुमुदबधु खरकरम् ।  
 घरत्युर्वी गुर्वी कथमपिच भारेण नमति,  
 तथा तीव्रे रागे कनकरथवच्छ भवति भो ॥ ५ ॥

अथ—लोहे का जहाज पानी में किस लिए तरता है ? सूर्य  
 चन्द्र का विस लिए धारण करता है, तथा ऐसी बड़ी पृथ्वी  
 भार से किम लिए नमती है ? उसी प्रकार तीव्र राग होते हुए  
 भी करन रथ की तरह क्या सुख होता है ॥ ५ ॥

## द्वेष प्रकरण

यस्माच्च वद्व्यते कर्म, तपस्यतो न मुचते ।

तत्प्राणिनामितिभात्वा, त्याज्यो द्वेषोबुधै सच ॥-१ ॥

अथ—जिस द्वेष में प्राणियों का कम बधन होता है । तथा  
 तपस्या तपने पर भी जिसके कारण प्राणी को मोक्ष प्राप्त होता  
 नहीं, यह जानकर उस द्वेष को पण्डितों को त्याग देना  
 चाहिए ॥ १ ॥

स्वकीय परस्वीयच, द्वेषाक्तन सदा जना ।

विद्वधे रन् वाक्यशत्यैश्च, बन्धुलकटका यथा ॥ २ ॥

अर्थ—मनुष्य द्वेष से बन्धुन के बाटा के समान हमेशा अपने

और पगये मनुष्यों का वचन रूपी शल्यो से छेदते हैं ॥ २ ॥

येषु यावच्च रागोऽभूत्, तेषु तावच्च सद्गुणाः ।

द्वेषोत्पन्नेषु तेष्वेव, दोषं पश्येद्वि केवलम् ॥ ३ ॥

अर्थ—जिन मनुष्यों में जहाँ तक राग हो वहाँ तक उसमें सद्गुण दूढ़े जाते हैं और उसी में से जब द्वेष होता है तब केवल दुपण ही दूढ़ते हैं ॥ ३ ॥

द्वेषिणां ज्वरिणां लोके द्वयोः साम्या प्रति क्रिया ।

क्रूरत्वं कटुकत्वं च, वहिरंतोऽपितापवान् ॥ ४ ॥

अर्थ—द्वेषी मनुष्य और ताप वाले (क्रोध) मनुष्य की प्रकृति समान होती है क्योंकि द्वेषी में जैसे क्रोध प्रवृत्ति होती है उसी प्रकार ताप वाले में भी कड़वाहट होती है । तथा बाहर से अतरंग से वह ताप वाला होता है ॥ ४ ॥

श्रीद्वीपायनतापसेन महती प्रज्ज्वालिता द्वारिका

द्वेषादेव च वर्धमाननगरे श्रीशूलपाणिर्भूत् ।

मारी येन विमोचिता च सहसा लोकाश्च दुःखी कृता,

तस्मात्सोऽत्र विमुच्यतामिति जिनैर्व्याख्यायि संघेनघे ॥ ५ ॥

अर्थ—द्वेष से द्वीपायन नामक तपस्वी ने महान् द्वारिका नाम की नगरी को जला दिया तथा वर्धमान नाम के नगर में जो शूलपाणी यक्ष हुआ । तब तुरन्त मरकी चला कर लोगों को दुःखी किया । अर्थात् द्वेष को छोड़ो । इस प्रकार जिनेश्वर भगवान् के द्वारा निष्पापी सब के समक्ष कहा हुआ है ॥ ५ ॥

## कलह प्रकरण ।

अग्नि सूते यथा घूम घूम सूतेऽसितद्युतिम् ।

अयायोऽपयसा सूते, तद्वत्त्वलेशश्चकित्वपम् ॥ १ ॥

अर्थ—अग्नि जिस प्रकार घुमाँ पैदा करता है, धुआँ जिस प्रकार श्याम कान्ति को पैदा करता है तथा अयाय जिस प्रकार अपयश को उत्पन्न करता है उसी प्रकार त्वलेश दुख को उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

स्तोकोऽप्यग्निदं हत्येव, काष्ठादिप्रभृत घनम् ॥

त्वलेशलेशोऽयं तद्वच्च, वृद्धितस्तनुदाहक ॥ २ ॥

अर्थ—थोड़ी अग्नि भी जिस प्रकार ज्यादा लकड़ी जला सकती है उसी प्रकार लेश मात्र त्वलेश की वृद्धि से शरीर जल जाता है ॥ २ ॥

यलकेन यथा चद्र, क्षारेण लवणाबुधि ।

कनहेन तथा भाति, ज्ञानवानपि भानव ॥ ३ ॥

अर्थ—जिस प्रकार कलक से चद्रमा, खार से समुद्र । उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य तलह से शोभित होता है ॥ ३ ॥

आन्मान तापयेन्नित्य, तापयेच्च परानपि ।

उभयोर्दुः खल्वलेशो, ययोऽप्यणरेणुका क्षिती ॥ ४ ॥



अर्थ—इस पृथ्वी में गर्म हुई रेत-की तरह क्लेश है जो कि खुद को व दूसरे को हमेसा ताप देते हैं । अतः इसी प्रकार क्लेश भी दोनों को दुःख देता है ॥ ४ ॥

संग्रामतोऽनेन सुखं ह्यवाप्तमिति श्रुतं केन न दृष्टमुर्व्या ।  
कंसेन सा जीवजसाशु लेभे, या युग्मवंशक्षयकारिणी च ॥ ५ ॥

अर्थ—संग्राम करने से किसे मनुष्य को सुख मिला । यह दुनियाँ में किस मनुष्य ने सुना है ? क्योंकि कस ने जीव जसा को प्राप्त किया जो दोनों वंशों का क्षय करने वाली सिद्ध हुई है ॥ ५ ॥

## अभ्याख्यान प्रकरण

काचकामलदोषेण, पश्येन्नेत्रे विपर्ययम् ।

अभ्याख्यानं वदेभीह्वा, तत्र रोगः कउच्यते ॥ १ ॥

अर्थ—मनुष्य काच कामल नाम के दोष से विपरित तरह से देखता है किन्तु जीभ जो अभ्याख्यान बोलती है उसमें कौन सा रोग कहलाता है ॥ १ ॥

यथाऽभक्ष्यं न भक्ष्येत, द्वादशव्रतधारिभिः ।

अभ्याख्यानं न चोच्येत, तथा कस्यापि पंडितैः ॥ २ ॥

अर्थ—जिस प्रकार बारह व्रतधारी अभक्ष वस्तु नहीं खाते उसी प्रकार पंडित भी किसी का अभ्यास नहीं बोलते ॥ २ ॥

अग्नि स्तोकाद्वृद्धिमायाति योगात्  
तद्वृद्धि क्लेशलेश प्रयाति ।

अभ्यासनात् स्तोक्तः कर्म वृद्धि  
प्राप्नोत्येव कष्टत सा न याति ॥ ३ ॥

अर्थ—जिस प्रकार अग्नि बाड़े योग से वृद्धि पा जाती है उसी प्रकार क्लेश का लेश मात्र भी वृद्धि पा जाता है। उसी प्रकार बाड़े अभ्यासना से कर्मों को वृद्धि पाते हैं और इन कर्मों को वृद्धि इस प्रकार कष्ट से भी जाती तही ॥ ३ ॥

देवेषु किंत्विष्यो देवो, ग्रहेषु च शनैश्चरः ॥ ४ ॥

अभ्यासना तथा कर्म, सव कर्मसु गर्हितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—जिस प्रकार देवों में किंत्विष्य-देव तथा ग्रहों में शनैश्चर उसी प्रकार अभ्यासना सभी कर्मों में निहित है ॥ ४ ॥

दवैश्चपाद्धारमूढघाटित तत्

सौभद्राया गोलमाहात्म्यमेव ।

मिव्याणिया दुगतित्वा हि तस्या

यदचा अभ्यास्यामेवात्र हेतु ॥ ५ ॥

अर्थ—जैसे वे चम्पा नारा का द्वार खोला था उसी प्रकार

से मिलता भुलता मुभद्रा के शील का महात्मय था । तया उसकी मिथ्यात्वी मृ मासु की दुर्गति हुई उसमें सिर्फ अभ्याख्यान ही कारण था ॥ ५ ॥

## पैशून्य प्रकरण

अदाता च यथा लोके, वरो निःस्वो घनी न च ।

मूको वरं न वाक्दधः, पैशून्यं यदि तिष्ठति ॥ १ ॥

अर्थ—जिस प्रकार दुनियां में निर्वन अच्छे होते हैं किन्तु नहीं दान देने वाला घनवान अच्छा नहीं होता । इस प्रकार मूंगा मनुष्य अच्छा होता है किन्तु जो चुगलीखोर मनुष्य होता है ऐसा वाचाल मनुष्य अच्छा नहीं होता ॥ १ ॥

दानशीलतपोभावै-रस्यैघतेवृषो भुवि ।

यस्य मनोवच.कायैः, पैशून्यं नाभिसंश्रयेत् ॥ २ ॥

अर्थ—जिस मनुष्य के मन में, वचन में और काया में चुगली का आश्रय रहा हुआ नहीं है उसका धर्म, दान, शील, तप और भाव दुनियां में वृद्धि पाता है ॥ २ ॥

अन्यस्य तापनाद्यर्थं, पैशून्यं क्रियते जनैः ।

स्वात्मा हि तप्यते तेन, यदुसं स्यान्फलं च तत् ॥ ३ ॥

अर्थ—दुमरों को दुःख देने के लिए जो मनुष्य चुगली खाता

हैं उससे उल्टा खुद की आत्मा को दुःख होता है-क्योंकि, जैसा बोया हो वैसा फल मिलता है ॥ ३ ॥

दान व विफल नित्य, शीयं तस्य निरयंकम् ।

पशून्य केवल चित्तो, वसेद्यस्याज्यशो भुवि ॥ ४ ॥

अर्थ—जिनके मन में केवल जुगत्ती ही रही हुई है उसका दान निष्फल जाता है तथा उसका पराक्रम भी निष्फल जाता है और उसका अण्डा पृथ्वी पर फल जाता है ॥ ४ ॥

## रत्यरति प्रकरण

न विद्यतेरति प्राज्ञ, न विद्येतारति पुन ।

कर्माधीन व सर्वं स्या-त्ततस्तामल्पताकुरु ॥ १ ॥

अर्थ—अच्छा मनुष्य रति को गिनता नहीं उसी प्रकार धरति को भी गिनता नहीं, क्योंकि सभी कर्मों के 'आधीन' है । इसलिए उन रति धरति को कम करो ॥ १ ॥

आदौ रागस्ततो द्वेष-स्तस्मात्केशपरंपरा ।

तद्वदादौ रतिश्चार-तिस्ततः कर्मवधनम् ॥ २ ॥

अर्थ—जिस प्रकार पहले राग, और उससे द्वेष तथा उससे वरग की परंपरा पड़ जाती है । उसी प्रकार पहले रति उससे धरति और उससे ही कर्म बंधन होता है ॥ २ ॥

वरं-छाया वरं वायु-वरं-पुत्रो वरं-घनम् ।

वरं बंधुवरं जाये-त्यादिरत्युद्भवं वचः ॥ ३ ॥

अर्थ—छाया उत्तम है वायु उत्तम है, पुत्र उत्तम है, घन उत्तम है, बंधु उत्तम तथा श्री उत्तम है इत्यादि वचन रति से उत्पन्न होने वाला जानना चाहिए ॥ ३ ॥

उष्णा छाया घनंस्तोकं, वायुर्लूतादिसंयुतः ।

कुपुत्रः कुलटा रामे-त्याद्यरत्युद्भवं वचः ॥ ४ ॥

अर्थ—छाया उष्णा है, घन थोड़ा है, वायु लू चलने जैसा है, पुत्र दुराचारी है, श्री कुलटा है इत्यादि वचनो को अरति से उत्पन्न हुआ जानना चाहिए ॥ ४ ॥

## परापवाद प्रकरण

रजांसि दशना यत्रा-ध्वरोष्ठिककरीद्वयम् ।

मूर्खरसनापराप-वादगूथं समुद्धरेत् ॥ १ ॥

अर्थ—जहाँ दान-रूपी रज है तथा होठ रूपी दोनो ठोकड़ी है उसी प्रकार मूर्खों की जोभ दूसरो के लिए अपवाद रूपी विष्ठा उठाती है ॥ १ ॥

वक्तुं नैव क्षमा जोह्वा, यदि मूकस्य तद्वरम् ।

परं परापवादं च, जंजप्यतेन-तद्वरम् ॥ २ ॥

अथ—जिस प्रकार गूँगे मनुष्य-की, जीभ बोलने के लिए शक्तिवात् होती नहीं, फिर भी थ्येष्ठ है। किन्तु जो जीभ दूसरे का अपवाद बोलती है, वह उत्तम नहीं है ॥ २ ॥

वक्त परापवादेन, स्वस्य यत्समल कृतम्-।  
तच्च केनाप्युपायेन, कतुं नार्हति निर्मलम्-॥ ३ ॥

अथ—दूसरे का अपवाद से खुद का मुँह मलीनता वाला हुआ है उसको वह किसी भी उपाय से निर्मल नहीं कर सकते ॥ ३ ॥

एके च जातिचडाला, कर्म चडाल निदक ।  
भात्वेति हृदये-सम्यक्, परापवादमात्यजेत्-॥ ४ ॥

अथ—इस दुनियाँ-में कितने ही तो जाति से चण्डाल हैं किन्तु निन्दा करने वाले का कर्म भी तो चण्डाल ही है, इसलिए ठीक तरह से हृदय में जानकर दूसरा को अपवाद करने का त्याग करो ॥ ४ ॥

## मायामृपा प्रकरण

मनस्यन्यद्वचस्यन्यत् मायामृपा च सोच्यते ।

कदापि सुखदा न भ्या-द्विधे यथा परागना ॥ १ ॥

अथ—मन में क्या और वचन में क्या उसको माया मृपा कहते हैं जिस प्रकार जगत में वरुणा को कभी भी सुख करने वाली नहीं ॥ १ ॥

फलं व्यर्थेन्द्रवारुण्याः, कटु मायामृषावचः ।

अंतरंगधिया श्रेयस्करं न स्याद्यतोऽत्र च ॥ २ ॥

अर्थ—जिस प्रकार इन्द्रवारुणी नामक वेल का फल कड़वा होता है, उसी प्रकार मायामृषा का वचन कड़वा है और वह अंतरंग बुद्धि से इस दुनिया में कल्याणकारी होती नहीं ॥ २ ॥

खङ्गधारां मधुलिप्तां, विद्धि मायामृषां ततः ।

वर्जनोया प्रयत्नेन, विदुषा शिववाञ्छता ॥ ३ ॥

अर्थ—मायामृषावाद को मधु से लिपटाती हुई तलवार की धार समान जानना चाहिए, उसी प्रकार कल्याण चाहने वाले ऐसे पण्डितों को प्रयत्नपूर्वक उसका त्याग करना चाहिए ॥ ३ ॥

मुग्धप्रतारणाद्यर्थं मायामृषां वदेन्न च ।

पूर्वं सुधानिभा सा च, यतोऽंते तत्फलं कटु ॥ ४ ॥

अर्थ—भोले मनुष्य को ठगने आदि के लिए मायामृषावाद बोलना नहीं क्योंकि पहले तो अमृत रस के समान लगता है किन्तु उसका परिणाम उसका कड़वा फल है ॥ ४ ॥

## मिथ्यात्वशल्य प्रकरण

गत्रुभिर्निहितं शस्त्रं, शरीरे जगति नृणाम् ।

यथा व्यथां करोत्येव, तथा मिथ्यात्वमात्मनः ॥ १ ॥

अथ—शत्रु द्वारा शरीर पर फेंका हुआ शस्त्र जिस प्रकार इस जगत में मनुष्य को दुःख देते हैं, उसी प्रकार मिथ्यात्वा शल्य आत्मा को दुःख देता है ॥ १ ॥

दुर्वचन पराधीन, शरीरे कष्टकारकम् ।

शल्य शल्यतर तस्मात्, मिथ्यात्वशल्यमात्मनि ॥ २ ॥

अथ—शल्य समान कुवचन है पराधीनता जिस प्रकार कष्ट कारक है जादा शल्य रूप वसा ही मिथ्यात्व आत्मा को कष्ट कारक है ॥ २ ॥

स्वाध्यायेन गुरोर्भक्त्या दीक्षया तपसा तथा ।

येन केनोद्यमेनैव, मिथ्यात्वशल्यमुद्धरेत् ॥ ३ ॥

अथ—सज्जाय के ध्यान से, गुरु की भक्ति से, दीक्षा से, तप से इस प्रकार जहाँ तक हो उद्यम से मिथ्यात्व-रूपी शल्य का उद्धार कर ॥ ३ ॥

मिथ्यात्वशल्यमुन्मूल्य, स्वात्मान निर्मलीकुरु ।

यथाऽजस्र सुमिहूर-रजसाभुवि दपण ॥ ४ ॥

अथ—हे भव्य प्राणी ! तू मिथ्यात्व रूपी शल्य को मूल में से उखाड़कर तेरी शुद्ध की आत्मा-को निमल कर । किस तरह उस तरह कि हमेशा सिन्दूर के रज से दुनियाँ में जिस प्रकार दपण निमल होता है उसी प्रकार ॥ ४ ॥



## द्यूतव्यसनं प्रकरण

न च स्याद् द्रोहतः प्रेम, परस्त्री लंपटाद्यशः ।

दयया रहितो धर्मो, यथा द्यूताद्वनं तथा ॥ १ ॥

अर्थ—जिस प्रकार द्रोह से प्रीति होती पर स्त्री से प्रेम करने से यश मिलता नहीं तथा दया विना जिस प्रकार धर्म होता नहीं उसी प्रकार जुगार खेलने से धन नहीं होता ॥ १ ॥

द्यूतस्य व्यसनं त्याज्यं, नरेण शुभवाञ्छता ।

हठाद्यदि न मुच्येत, तदा क्लेशपरंपरा ॥ २ ॥

अर्थ—कल्याण को चाहने वाले मनुष्य को जुगार को व्यसन त्याग देना चाहिए और अगर व भी हठ से जो उसका त्याग करने में नहीं आवे, तो क्लेश ही क्लेश होता है ॥ २ ॥

लभेत गं पराधीनात्, तत्त्वबुद्धिं तु मद्यपात् ।

यदा प्रमादतो ज्ञानं, भवेद् द्यूताद्वनं तदा ॥ ३ ॥

अर्थ—जो पराधीनता से सुख मिलता हो, जो मदिरा पान करने वाले मनुष्य के पास से तत्व की बुद्धि मिलती हो तथा प्रमाद से जो ज्ञान मिलता हो तो जुगार से धन मिलता है ॥ ३ ॥

न यंत्रसाध्यं न च तंत्रसाध्यं, न मंत्रसाध्यं न च मंत्रिसाध्यम् ।

एवंविधं द्यूतमतः प्रमोच्यं, नो चेत्यजेत्पाण्डववद्भवेच्च ॥ ४ ॥

। अर्थ—जुगार को धन से भी साध सकते नहीं, तब से भी साध सकते नहीं, मंत्र में भी साध सकते नहीं तबो मंत्री से भी साध सकते नहीं अतः इस प्रकार के जुगार का त्याग करो । अगर उसका त्याग नहीं कर सकोगे तो, पाण्डवों की, तन्त्र दुःख मिलेगा ॥ ४ ॥

छूतान्नलेनापि च राज्यभागमनोचि द्रव्यनृपकोटिभिश्च ।  
श्रीमूलदेवप्रमुखैस्तथेह लभेत कोद्यूतत एव धूमनम् ॥ ५ ॥

अर्थ—जुगार से नैल राजा को राज्यभरि त्यागना पडा तथा श्री मूलदेव आदि क्रोडोगम के राजाओं को द्रव्य त्याग करना पडा इस प्रकार इस दुनिया में किसे मनुष्य ने जुगार से धन प्राप्त किया है ॥ ५ ॥

### मांसव्यसन प्रकरण

मामादनात्प्रणश्यति, देहश्री सुमति सुखम् ।

शीघ्रं मत्स्य यश पुण्य, श्रद्धाविश्वाससद्गति ॥ १ ॥

अर्थ—मांस भक्षण करने में शरीर की शोभा, उत्तम बुद्धि, सुख, पवित्रता मत्स्य यश, पुण्य श्रद्धा, विश्वास तथा उत्तम गति का प्राप्ति होता है ॥ १ ॥

मामादनाभक्तानां हि, जायते विभ्रमो ध्रुवम् ।

निदयत्यमशीच्य च, दुर्घोदु सपरपरा ॥ २ ॥

अर्थ—अर्थात् मांस भक्षण से मनुष्यों को वास्तव में विभ्रम, निर्देयता, अपवित्रता, दुर्बुद्धि तथा दुःख प्राप्त होता है ॥ २ ॥

प्रपश्यन्ति पशून् यत्र, मनस्तत्र प्रवर्तते ।

रंगिता मांसपुष्टेस्या, दुर्बलत्वे विरागता ॥ ३ ॥

अर्थ—अर्थात् मांस खाने वाला मनुष्य जैसे ही पशुओं को देखता है वैसा ही उसका मन हो जाता है । अर्थात् पशु मांस में पुष्ट हुआ होता है उसके उपर राग बंध जाता है तथा जो पशु दुर्बल होता है उसके प्रति उसको विराग हो जाता है ॥ ३ ॥

पापकर्मघटे पूर्णो, रौद्राध्यानवशं गते ।

मांसभुग्मरणं प्राप्य, व्यथां सहते दुर्गतेः ॥ ४ ॥

अर्थ—मांस भक्षण करने वाले मनुष्य अपने आप कर्मों का घड़ा भरते हुए भी रौद्राध्यान के वशीभूत होते हुए भी मृत्यु प्राप्त कर नरक की वेदन सहन करते हैं ॥ ४ ॥

सा रेवती या नरके प्रविष्टा

मांसादनाद्भीम कुकर्मकर्त्री

श्री श्रेणिकेनापि पलाशनाच्च

प्राप्ता हि पीडा नरकस्य तीव्रा ॥ ५ ॥

अर्थ—भयकर कुकर्म करने वाली प्रसिद्ध खेती को मांस भक्षण करने से नरक में प्रवेश करना पड़ा । और श्री श्रेणिक राजा ने भी मांस भक्षण से नरक की भयकर पीड़ा प्राप्त की ॥ ५ ॥

# मदिरापान व्यसन प्रकरण

पारवश्यमशुचित्व, विकलत्वमचेष्टता ।

निर्दयत्व भवेत्तस्मात्, सुरापान विवर्जयेत् ॥ १ ॥

अथ—मदिरा पान से परवशता, अपवित्रता, विकलता, निश्चेष्टता तथा निदयता होती है । अतः मदिरा पान का त्याग करना चाहिए ॥ १ ॥

शथित्य विशहे वस्त्रे, नेत्रयुग्मे मदाघता ।

पतनं यत्र तत्रापि, मद्यं पिबेत्ततो न च ॥ २ ॥

अथ—अर्थात् मद्यपान करने से शरीर में श्रौर वस्त्र में शिथिलता होती है । दोनों आँखों में मदाघता (नजर कम) होती है तथा जसे तसे पतन होता है । इस कारण मदिरा पान नहीं करना चाहिए ॥ २ ॥

सततिर्नास्ति वध्याया, कृपणस्य यशो न हि ।

गततरस्य जयो नैव, मद्यपस्य न सद्गतिः ॥ ३ ॥

अथ—जैसे वध्या स्त्री के सतता नहीं हाती कृपण का यश नहीं मिलता, ङ्गपाक को विजय नहीं मिलती, उसी प्रकार मदिरा पान कराने वाले मनुष्य को उत्तम गति नहीं मिल पाती ॥ ३ ॥

यस्या धनो माघववामुदेव, सुवर्णदुर्गा धनदेवदत्ता ।

सा द्वारिणा प्रज्वलिता च नूनं

तत्रापि ह्युदितं मद्यपानम् ॥ ४ ॥

अर्थ—जो द्वारिका नगरी के स्वामी श्री वसुदेव थे तथा जिनके सोने का गढ़ था तथा जिसको कुबेर ने दिया था वह द्वारिका जो वास्तव में जल गई उसमें भी मद्यपान का ही फल था ॥ ४ ॥

## वैश्या व्यसन प्रकरण

कुष्ठाभिभूतमृत्यानां, मन्येतानंगतुल्यताम् ।

द्रव्यार्थं न च स्नेहार्थं, गरिका सुखदान न सा ॥ १ ॥

अर्थ—जो वैश्या स्त्री स्नेह के लिये नहीं परन्तु सिर्फ द्रव्य के लिये कोढ़ से पर भव पाये हुए मनुष्यों को भी काम देव के समान मानती है अतः ऐसी वैश्या सुखदाई नहीं ॥ १ ॥

लोभार्थिनी निर्लम्बा च, पापिष्ठा पापिष्ठा पापकुण्डिका ।

विट्चुविता च निःस्नेहा, कथं सेव्या पराङ्मना ॥ २ ॥

अर्थ—केवल लोभ के ही प्रयोजन वाली, बिना लज्जावाली, पापिष्ठ, पापों के कुण्ड के समान वैश्यागामी पुरुषों से चुनवन करने वाली तथा बिना स्नेह की ऐसी वैश्या स्त्री का क्यों सेवन करना चाहिये ॥ २ ॥

सा कंयाश्लेषमाधत्ते, परं प्रीतिविवर्जिता ।

तेनाऽस्मास्तत्र बध्यन्ते, यथा सिंहाश्च पंजरे ॥ ३ ॥

अर्थ—वह कठ से आलिंगन तो करती है, किन्तु वह बिना प्रेम की ही होती है। अर्थात् गज्ञानी मनुष्य, पिंजरे में जिस प्रकार सिंह बधता है उसी प्रकार उसके साथ प्रेम से बध जाता है ॥ ३ ॥

वैश्यासगाच्च सप्तैव, नश्यत्यच्छविर्यशः ।

लम्भा च सतति सिद्धि, द्रव्यं च गृहगागना ॥ ४ ॥

अर्थ—वश्या के सग से नीचे बताई हुई साथ वस्तुओं का नाश होता है शरीर की क्रांति, यश, लज्जा सतति, सिद्धि, धन तथा घर की स्त्री का नाश होता है ॥ ४ ॥

कदापि वैश्या न गुणाधिनी स्या,

द्रूपाधिनी नैरहिताधिनी च ।

विद्याधिनी नापि न मन्यसे चेद्वार्ता

शृणु त्व कयवन्नकस्य ॥ ५ ॥

अर्थ—वश्या स्त्री कभी भी गुण वाली, रूप वाली, हित करने वाली, विद्या की प्रयोजन वाली नहीं होती। अतः हे नव्य प्राणो अगर तू यह बात नहीं मानता हो तो तू कयवन्न की कथा का श्रवण कर ॥ ५ ॥

## आखेट व्यसन प्रकरण

घृणात्प्रस्विन्नदेहश्च, ह्यक्यते वनगह्वारे ।

आखेटे किं मुखं तत्र, पापरूपे निजात्मनः ॥ १ ॥

अर्थ—जो तुम्हे शिकार पकड़ने से शरीर पर पसीना होता है तथा भयकर चन में भटकना पड़ता है तो ऐसे पाप रूपी शिकार में तुम्हे अपनी आत्मा को क्या सुख मिलता है ॥ १ ॥

पुनः पुनः प्रवच्येत, परभवे नरकावनौ ।

सततं रुधिरालिप्त-करेणाखेटकारिणा ॥ २ ॥

अर्थ—हमेशा खून से लिपटा हुआ जिसका हाथ होता है ऐसा शिकार करने वाला मनुष्य पर भव में नरक में जाकर बराबर अत्यन्त दुःख पाता है ॥ २ ॥

आखेटकेषु विध्येरन्, प्राणिनः प्राणिनोऽत्र ये ।

नरके तेऽप्यनुविध्येरन्, परत्रेत्यवदभिनः ॥ ३ ॥

अर्थ—जो प्राणी इस जगत में शिकार पकड़ कर खाता है वह पर भव में नरक में जाकर विधाता है इस प्रकार श्री जिनेश्वर भगवान् ने कहा है ॥ ३ ॥

श्वभ्रद्वाराणि पञ्चैव, द्रोहो हत्या तथा भुवि ।

मांसादनं गुरोर्निंदा, तथा खेटकपातकम् ॥ ४ ॥

अर्थ—इस जगत में नरक जाने के पांच द्वार कहे हैं द्रोह (दुश्मनों की ईर्ष्या) हत्या यानि जीवों की हिंसा मांस, भोजन गुरु की निंदा तथा शिकार से हुए पाप ये पाँच नरक के द्वार हैं ॥ ४ ॥

आखेटकं चेद्यदि न त्यजेच्च,

परत्र वधादिक दुःखराशिम् ।

सहेत चास्मिन् परमापद हि,

यथाऽजपुत्रो रघुवशजात ॥ ५ ॥

अर्थ—प्राणी । कोई भी मनुष्य परलोक में जिस प्रकार वधन आदि दुखों के समूह से भरा पड़ा है ऐसा मनुष्य अगर शिकार को नहीं त्यागता है तो वह रघुवश में उत्पन्न हुआ भज पुत्र की तरह इस लोक में भी अत्यन्त दुःख सहन करता है ॥ ५ ॥

## चौर व्यसन प्रकरण

चौर्यकर्ता चौरमत्री, स्थानदश्चौर रक्षक ।

चोरेण सह व्यापारी, चौर पचविध स्मृत ॥ १ ॥

अर्थ—चोरो करने वाला, चार के साथ गुप्त वाँते करने वाला, चोर को रहो के लिए स्थान देने वाला चोर का रक्षण करने वाला तथा चोरो के साथ व्यापार करने वाला इस प्रकार के पांच प्रकार के चार बहलाते हैं ॥ १ ॥

निर्दय सरवाक् क्रूर, शठोद्धृष्टश्च निर्भय ।

निर्दाक्षिण्य क्रूरकर्मा, चौरम्याष्टौ गुणा स्मृता ॥ २ ॥

अर्थ—मिना दया वाला, कठोर वचन बोलने वाला, क्रूर लुच्चाई करने वाला, ढोढ, बिना भयवाला, अनुदार तथा क्रूर



कार्य करने वाला, इस प्रकार ने आठ दूषण चोरों के कहलाते हैं ॥ २ ॥

चोरस्य पञ्च चिह्नानि, भ्रमदृष्ट्वा चंचलाननः ।

वस्त्वासक्तमना व्यग्र, इतस्ततो निरीक्षणम् ॥ ३ ॥

अर्थ—चोर के निम्नलिखित चार चिह्न होते हैं। वह भ्रमयुक्त दृष्टि वाला, चंचल मुख वाला, वस्तुओं में आसक्त मन वाला व्यग्र तथा ऊपर ऊपर देखने वाला होता है ॥ ३ ॥

भयं भिक्षा वधो दंभः शृङ्खलापदबंधनम् ।

शूलिकारोपणं मृत्युः, फलानि चोरकर्मणः ॥ ४ ॥

अर्थ—भय, शिक्षा, वध, दण्ड, साकल से पैर बंधे हुए, शूली पर चढ़ने वाला तथा मृत्यु इतने चोरी करने के फल है ॥ ४ ॥

भातातो विजयस्य चीर्यकरणं संसारसंज्ञावनं,  
चान्यस्माद्वसुभूतितस्करकथां श्रुत्वा त्यज दूरतः ।

यत्पुण्यं भज रोहिण्येक इव प्रौढं सुखं लिप्ससे,  
नोचेद्दुर्गं नियातनाफमिदं भुङ्क्व स्वकर्मोदयात् ॥ ५ ॥

अर्थ—संसार में डूबाने वाली, ऐसी विजय करने वाली चोरी जानकर तथा वसुभूति चोर की कथा सुनकर उस चोरी को हे प्राणी तू छोड़ दे। यदि तुमको उत्कृष्ट सुख की इच्छा हो तो रोहिण्य नाम के चोर के पुण्य को भजो-? नहीं तो कर्मों के उदय से तुम्हें दुर्गति का फल भोगना पड़ेगा ॥ ५ ॥

## परदार प्रकरण

नित्य मनोवचःकायै, यं परस्त्रीषु लपट ।

सहते स हि दुःख च, श्वश्रे ताडना दिकम् ॥ १ ॥

— अर्थ—जो मनुष्य हमेशा मन, वचन, और काया से पर स्त्री में लिपटा रहता है। उस मनुष्य को नरक में ताड़ना आदि का दुःख सहन करना पड़ता है ॥ ५ ॥

रगो फलेच्च वृक्षश्चेत्, सुयश स्यात्कुर्मण ।

कुवाक्याच्छ लभते यत्तदा परस्त्रिय सुखम् ॥ २ ॥

अर्थ—यदि रेतीले मदान में वृक्ष से फल पैदा होगा, कुकर्म से यश मिलेगा, कुवचन से सुख मिलेगा, तब ही पर स्त्री सेवन से सुख प्राप्त होगा ॥ २ ॥

इद्रधनुः कराऽस्पृक्च, न वश पवनो यथा ।

तथा दुर्गह्यमेव स्यात्, परस्त्री हृदयं सेदा ॥ ३ ॥

अर्थ—जिस प्रकार इद्र के धनुष को हाथ से स्पृश नहीं कर सकते तथा पवन को वश में नहीं कर सकते, उसी प्रकार पर स्त्री के मन की भी हमेशा पहिचान नहीं सकते ॥ ३ ॥

लोके दुर्ग्रहता ख्याता, या सार्धं सप्तवापिकी ।

परस्त्री सैव विभेया, यत प्राप्नोति चापदम् ॥ ४ ॥

अर्थ—दुनिया में जो साढ़े सात वप की पनोती प्रसिद्ध है उसी प्रकार उस पर स्त्री को भी जानो, क्योंकि इससे दुःख ही होता है ॥ ४ ॥

त्यजेत्मुन्मार्थी परदारसंगं,  
नोचेत्स पद्मोत्तरवद्भवेच्च ।

मतातरे गीतमतापसस्य,

दारानुगागादभवद्भवेः किम् ॥ ५ ॥

अर्थ—मुख को चाहने वाले मनुष्य को पर स्त्री के संग को त्याग देना चाहिए । नहीं तो पद्मोत्तर राजा की तरह आपदा होती है तथा अन्य दर्जने में भी जैसे गोतम ऋषि को स्त्री के अनुराग से मूर्ख की क्या दशा हुई ॥ ५ ॥

## पाप प्रकरण

भवेयुः प्राणिनः पापात्कासश्वासज्वरादयः ।

सखायोऽपि कदर्याश्च, नागश्रीवन्मही तले ॥ १ ॥

अर्थ—पाप से प्राणियों को खांसी, श्वास, तथा ज्वर आदि की बिमारियाँ होती हैं । तथा इस पृथ्वी पर नाग श्री की तरह नीच सोवते होती हैं ॥ १ ॥

अमृतं कालकूट स्यान्मित्रं शत्रुःसुबोरधीः ।

सम्भनोदुर्जनः पापा, द्विपरीतं फलं त्विह ॥ २ ॥

अर्थ—पाप से अमृत जहर होता है, मित्र शत्रु होता है, उत्तम बुद्धि वाला निर्वुद्धि वाला होता है तथा सज्जन दुर्जन होता है । इसी प्रकार पाप से विपरित फल होता है ॥ २ ॥

गुणश्च दोषता याति, पापतो तद्वच्च शून्यताम् ॥ ३ ॥

ज्ञानमज्ञानतामेव, भ्रमरोगादिव देहिनः ॥ ३ ॥

अथ—भ्रम के रोग से किसी प्रकार के पाप से प्राणी के गुण दापो में हो जाते हैं। उदय शून्य की तरह ज्ञात होने लगता है। तथा ज्ञान अज्ञान की तरह हो जाता है ॥ ३ ॥

दुष्टा रामा सुता दुष्टा, दुष्टा परिजना जना ।

आतरो दुःखदातार, पापान्धुर्वन्ति सर्वदा ॥ ४ ॥

अर्थ—पाप से हमेशा स्त्रियाँ, पृत्र तथा नौकर भी दुष्ट हो जाते हैं और भाई हमेशा दुःख देने वाला हो जाता है ॥ ४ ॥

श्रीब्रह्मदत्तो नरचक्रवर्ती,

मृत्यागत, सोऽपि हि सप्तमी च ।

निगत्य तप्मान्धुवपकमग्न-

स्तथापि हेतु किल पातकस्य ॥ ५ ॥

अथ—जिस प्रकार—ब्रह्मदत्त चक्री, मृत्यु, पाप्मन, सातवीं नरक में गये तथा वहाँ से निकल कर वे ससार रूपी कीचट में दूबे उस में भी पाप के कारण जानना चाहिए ॥ ५ ॥

## सम्यक्त्व प्रकरण

उपशामिकमेक च, परक्षायोपशामिकम् ।

श्रुतीय धार्मिकं तुयं, सालादन च वेदकम् ॥ १ ॥

अर्थ—पहला उपनामिक, दूसरा, धायोपनामिक, तीसरा  
 क्षायिक, चौथा सास्वादन तथा पांचवा वेदक सम्यक्त्व जानना  
 चाहिए ॥ १ ॥

जैनधर्मो च दक्षत्वं, संस्थैर्योन्नतिभक्तयः ।

तीर्थसेवेति पंचापि, सम्यक्त्वभूषणानि च ॥ २ ॥

अर्थ—जैन धर्म में दक्षता, स्थिरता, उन्नति, भक्ति, तथा  
 तीर्थ सेवा, ये पाँच समकित के भूषण हैं ॥ २ ॥

शंकाकांक्षाविचिकित्सा, जैनादन्यस्य संस्तुतिः ।

तत्संस्तवोऽपि पञ्चैव, सम्यक्त्वदूषणानि च ॥ ३ ॥

अर्थ—शंका, कंखा, विचिकित्सा, जैन के सिवाय दूसरे की  
 स्तुति और अन्य मत की प्रगल्हा, ये पाँचों समकित के दूषण  
 हैं ॥ ३ ॥

मूलं धर्मस्य सम्यक्त्वं, स्वर्गसौख्यफलप्रदम् ।

अनुक्रमेण मोक्षस्य, मुखदं भणितं ध्रुवम् ॥ ४ ॥

अर्थ—धर्म का मूल रूप, ऐसा समाकित स्वर्ग का मुख रूपी  
 फल देने वाला है । तथा इसी तरह वास्तव में मोक्ष का मुख  
 देने वाला कहाँ है ॥ ४ ॥

प्रबोधरत्नं हृदि यस्य नित्यं,

वसेद्वरं तस्य यगोऽपि मह्यम् ।

समेत पूजामिह मुक्तिमये,

स भूपति श्रेणिकवत्पृथिव्याम् ॥ ५ ॥

अथ—जिसके हृदय में हमेशा उत्तम एवं ज्ञान स्वी रत्न वसा हुआ है उन मनुष्यों का इसी पृथ्वी पर यश होता है तथा वे पूजने के लायक हैं और आखिर में वे श्रेणिक राजा की तरह मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

## पुण्य प्रकरण

कातरूप यशोलाभ, विद्वत्त्व<sup>१</sup> भामिनीसुखम् ।

पूर्णं धन सुत पुण्यात्, प्राप्नुयात् पूर्वसचितात् ॥ १ ॥

अथ—पूर्व भव में सचय किये हुए पुण्य से मनोहर रूप, यश, विद्वता, स्त्री सुख, धन और पुत्र प्राप्त करता है ॥ १ ॥

सभाव्यते ह्यसभाव्या, निजपुण्यप्रभावत ।

दवदत्यास्तिलके य-त्तेजोऽभूत् पूर्वपूण्यत ॥ २ ॥

अथ—अपने पुण्य के प्रभाव से असंभवित वस्तुएँ भी संभव हो जाती हैं क्योंकि पूर्व भव में पुण्य से दमयति के तिलक में तेज हुआ ॥ २ ॥

राजमा<sup>१</sup> धनाढ्यत्वा, सद्गुणाढ्यप्रियासुखम् ।

पूर्णं यशो विवेकित्वा, पुण्यद्रुमफलानि च ॥ ३ ॥

अर्थ—राजा की तरफ से मान, धनाढ्यपन, सगुणो स्त्री का सुख, सम्पूर्ण यश तथा विवेक ये सब पुण्य रूपी वृक्ष के फल हैं ॥ ३ ॥

तीर्थंकरत्वं चक्रित्वं, वासुदेवत्वमेव च ।

लभते च नरो भूम्यां, देवत्वं पूर्वपुण्यतः ॥ ४ ॥

अर्थ—पूर्व भव के पुण्य से मनुष्य पृथ्वी पर तीर्थ कर गौत्र, चक्रवर्ती वसुदेव तथा देव आदि पद भी प्राप्त कर सकता है ॥ ४ ॥

श्रीरामचंद्रस्य महाजयोभूत्,

पुण्यात्पुरा रावणसंगरे च ।

पुण्याढ्यराजा परमं प्रतापं,

लेभे बलं तत्र वृषस्य हेतुः ॥ ५ ॥

अर्थ—पूर्व भव मे किये हुए पुण्य से रावण के संग्राम मे श्री श्री रामचन्द्रजी की महान् जय हुई तथा पुण्य प्राप्त किये हुए राजा ने उत्कृष्ट प्रताप तथा बल जो प्राप्त किया है उसका पुण्य ही कारण है ॥ ५ ॥

## दान प्रकरण

स्याभक्तम् सफलं तस्य, सफलं चापि जीवितम् ।

यस्य वक्रो वसेन्नित्यं, दानमित्यक्षरद्वयम् ॥ १ ॥

दा—द्विजे मुनि मे दा, तेने दा अपर हमेना बने हुए  
 है, यका प्रीतिन गया जग जगन है ॥ १ ॥

गणपतुप्रतीप्याति, स्वर्गस्य मुनिपद ।

गणपतारभोगाध, प्राप्यते दानतो नरै ॥ २ ॥

अव—दा ग मुनि का म्यो पुत्र का मुनि, स्वर्ग के मुनि  
 का अपरिगदया सोव प्रकार के भोग प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

दागतिमत्रगति, गणपतिस्त्वयैव च ।

दागुमी पर माया, गणपतिस्त्वुलमा ॥ ३ ॥

अव—दा ग का दा गति, मत्र गति उमी प्रकार तत्र  
 गति भी है ग है किन्तु इन पृथ्वी पर दा गति तुल्य  
 है ॥ ३ ॥

दागति नर गति, स्वर्गगीत पत्र च ।

दागुमी गतिगति, गोप्येदाउत्तुमात्रत् ॥ ४ ॥

अव—दा ग दा गति मे भोग गति दिवसी है परमात्मा  
 के गति नर गति निम्न है गति दा प्रकार के अपरग  
 गति ॥ ४ ॥

पुत्र गति गति, दागतिगतिगतिगतिगति,

दागति गतिगतिगतिगतिगतिगतिगतिगति ।

पुत्र गतिगतिगतिगतिगतिगतिगतिगति,

दागति गतिगतिगतिगतिगतिगतिगतिगति ॥ ५ ॥



अर्थ—जिनके कमल रूपी हाथों से अत्यन्त दान देने की प्रकृति रही है। उनके राजा, दुर्ग के रक्षक, प्रधान सारथवाह (समुद्र मार्ग से व्यापार करने वाला) आदि सपें, बाघ, तथा हाथी आदि जलचर, भारडं आदि पक्षी, भूत, प्रेत, पिशाच तथा यक्षों के समूह भी उनके वश में होते हैं ॥ ५ ॥

## शील प्रकरण

हस्तसिद्धिर्वचःसिद्धिः, संपत्तस्य पदे पदे ।

श्रीसुदर्शनवद्यस्य, शीलमस्ति समुज्ज्वलम् ॥ १ ॥

अर्थ—जिनके पास सुदर्शन सेढ की तरह उज्ज्वल शील रहा हुआ है उसको हस्तसिद्धि, वचनसिद्धि तथा पग पग पर संपत्ति मिलती है ॥ १ ॥

कदाग्रहग्रहग्रस्ता, नारदाः क्लेशकारिणः ।

लेभिरंतेऽपवर्गं च, तत्र शीलस्य कारणम् ॥ २ ॥

अर्थ—हठ रूपी ग्रह से जकड़े हुए क्लेश कराने वाले नारद भी जिन्होंने मोक्ष पाया है उसमें शील का ही कारण है ॥ २ ॥  
अग्निर्जलं द्विपन्मित्र, तालपुटं सुधानिभम् ।

सिधुः स्थलं गिरिभूर्मि, हेतुः शीलस्य तत्र च ॥ ३ ॥

अर्थ—अग्नि जो ठंडी हो जाती, गन्धु मित्र हो जाते हैं, जहर अमृत हो जाता है, समुद्र स्थल हो जाता है तथा पर्वत जो भूमि रूप हो जाना है-उसमें भी शील का ही कारण है ॥ ३ ॥

यन्मत्र सिद्धता याति, तत्र फलति निश्चितम् ।

यत्र कार्यकर स्याच्च, तत्र शीलविजृम्भितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—जो मत्र सिद्ध हो जाता है, तत्र निश्चय करके फल जाता है तथा यत्र कम करने वाला हो जाता है उसमें भी शील का ही महत्व जानना चाहिए ॥ ४ ॥

प्रभावती चन्दनबालिका च,

राजीमती द्रुपदराजपुत्री ।

इत्यादिकानामुपसर्गहृत्,

शील समाख्यायि जिनै समासु ॥ ५ ॥

अथ—प्रभावती, चन्दनबाला, राजीमती तथा द्रुपदी इत्यादि के उपसर्ग हरने वाले जिनेश्वरों के समा में शील हा कहा है ॥ ५ ॥

## तप प्रकरण

स्वलालयेव कुष्ठोप-शमन दर्शित यत ।

लब्धा सा तपसा लब्धि, सनत्कुमारचक्रिणा ॥ १ ॥

अथ—जिसने अपनी लार से कोढ़ शांत कर दिखाया है वह लब्धि सनत्कुमार चक्री ने तप से प्राप्त हुए हैं ॥ १ ॥

वस्त्रं जलेन पूतं स्यात्पुनस्तन्मलिनं भवेत् ।

तपसा च कृतः शुद्धो, देहो न स्यान्मलीमसः ॥ २ ॥

अर्थ—वस्त्र जन से पवित्र होता है, परन्तु वह वापस गन्दा भी हो जाता है किन्तु तप से शुद्ध किया हुआ शरीर गदा होता नहीं ॥ २ ॥

दानेन न च या सिद्धिः, मंत्रतंत्रादिभिर्न च ।

सिद्ध्यति तपसा सिद्धिः, श्री बाहुबलिवत्किल ॥ ३ ॥

अर्थ—जो सिद्धि दान से या मंत्र तंत्र आदि से भी नहीं होती, वह सिद्धि श्री बाहुबली की तरह वास्तव में तपस्या से सिद्ध हुई है ॥ ३ ॥

तपसा क्षीयते कर्म, केवली कर्मणः क्षयात् ।

वृणुयात्तं च मुक्तिस्त्री-स्तत्र सौख्यं निरंतरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—तप से कर्म क्षय होते हैं, कर्मों के क्षय से प्राणी केवल ज्ञानी होते हैं तथा उससे मोक्ष रूपी मुक्ति प्राप्त होती है और उन्हें वहाँ निरंतर सुख मिलता है ॥ ४ ॥

तंतप्यते यश्च तपोऽभिराम-मटाट्यते नैव भवार्णवं च ।

लंलभ्यते मुक्तिकरं स सद्यो,

द्रढप्रहारीव सुखी च लोके ॥ ५ ॥

अर्थ—जो मनुष्य मनोहर तप तपता है उसको इस भव-रूपी समुद्र में भ्रमण करना नहीं पड़ता और वह तुरन्त ही मोक्ष-

पाता है और दृढ प्रहारी की तरह जगत में वे सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

## भाव प्रकरण

भव्यैश्च भावना भाव्या, भरते धरवद्यथा ।

फलति दानशीलाद्या, वृष्ट्याययेह पादपा ॥ १ ॥

अर्थ—भव्य लोका को, भरत राजा को तरह, भावना भानी चाहिए जिस प्रकार वृष्टि में यहाँ वृक्ष फलते हैं वैसे ही दानशील आदि फलते हैं ।

पचत्रि पचभिर्याश्च, भावना पचविंशति ।

ताभिर्महाप्रतान्येव, साधयत्यमृत पदम् ॥ २ ॥

अर्थ—गान और पाँच से गुणा करने में भावनाएँ पचचीस प्रकार की हैं और उन भावनाओं से (मुनि) महाप्रता की ओर मोन स्थान की साधना करते हैं ॥ २ ॥

दानेशीले तपस्येव, भावना मिलिता यदि ।

तदा मोक्षमुपायाद्या, चित्तनीया जनैरिह ॥ ३ ॥

अर्थ—दान, शील और तप में जो भावना मिली हुई हो तथा इन तीनों में भावनाओं की इच्छा करने चाहिये ॥ ३ ॥

सर्वतो देशतश्चैव, विरतिः सफला तदा ।

यदा भावयुता लोके, स्वर्गमोक्षसुखप्रदा ॥ ४ ॥

अर्थ—जो भावना से युक्त हो तभी सबसे, और देश से विरक्ति, इस लोक में सफल हो सकती है तथा स्वर्ग और मोक्ष के सुख का देने वाला हो सकता है ॥ ४ ॥

पट्खंडराज्ये भरतो निमग्न-स्तांवूलवक्तुःसविभूषणश्च ।

आदर्शहर्म्ये जटिते सुरत्नै,

ज्ञानं स लेभे वरभावतोऽत्र ॥ ५ ॥

अर्थ—छः खण्ड के राज्य में आसक्त हुए मुख में तंवूल का पान वाला तथा आभूषण वाला ऐसा भरत महाराज उत्तम रत्नों से जड़ा हुआ ऐसे आदर्श (आरिसा) भुवन में भी यहाँ उत्तम भाव से केवल ज्ञान प्राप्त किया है ।

---

## पूजा प्रकरण

घनाढ्यत्वं च सौभाग्यं विद्वत्त्वं सुपरिच्छदः ।

एकछत्रनृपत्वं च, देवपूजा फलं मतम् ॥ १ ॥

अर्थ—घनाढ्य पना, सौभाग्य, विद्वता, उत्तम परिवार, तथा एक छत्री राज्य ये सब देव पूजा के हो फल है ।

दारिद्र्य, मथ दोर्भाग्य, मूर्खत्व दुःपरिच्छद ।

दुर्मित्र दुर्नृपो दुर्धो, नैते स्युर्देवपूजनात् ॥ २ ॥

अथ—दारिद्र्यता, दुर्भाग्य, मूर्खता, दुष्ट परिवार, दुष्ट मित्र, दुष्टराजा तथा दुष्ट बुद्धि ये सब देव पूजा से होते नहीं ॥ २ ॥

योहि देवाचनं कुर्यात्, सैव हस्त प्रशसक ।

तद्विना च सर्वस्यापि, करो नीरर्थको मत ॥ ३ ॥

अथ—जिस हाथ से देव पूजा की जाती है वही हाथ प्रशसनीय होता है किन्तु बिना देव पूजा वाला हाथ निरर्थक माना हुआ है ॥ ३ ॥

ये देवा ये पुमांसश्च, शुद्धसम्यक्त्वधारिण ।

प्राप्नुयुर्देवपूजा ते, तिर्यचो नारका न च ॥ ४ ॥

अर्थ—जो देव तथा पुरुष शुद्ध समकीर्ति को धारण करने वाले हैं उन्हें देव पूजा मिल सकती है । तिर्यच या १ या नारकी नहीं मिलती ॥ ४ ॥

देवाचनं भव्यजनैर्विधेय, निरतर निमल भावयुक्तं ।

सौभाग्यमत्र त्रिदिव परत्र, सूर्याभवन्मुक्तिप्रद क्रमेण ॥ ५ ॥

अथ—निमल भाव वाले ऐसे भव्य लोगो को पूजा करनी चाहिये जिससे कि यहाँ सौभाग्य तथा परलोक में देवलोक मिले, तथा इस तरह करने से सूर्यावर्ण की तरह मांस देने वाला होता है ॥ ५ ॥

## गुरु प्रकरण

अयोमयोऽपि यो मर्त्यः, सुवर्णमुकुटोपमः ।

कृतो यगुरुणा नालं, तस्योपकार पूर्तये ॥ १ ॥

अर्थ—लोहे के समान मनुष्य को भी जिसने सुवर्ण के मुकुट के समान बनाया है ऐसे गुरु के उपकार का बदला चुका सकते नहीं ॥ १ ॥

गुरुः प्रवहणं सम्यक्, संसारार्णवतारणे ।

यथा केशीकुमारोऽभूत्, प्रदेशीनृपतारकः ॥ २ ॥

अर्थ—संसार रूपी समुद्र से तिराने में गुरु उत्तम जहाज के समान है । जिस प्रकार केशी कुमार मुनि प्रदेशी राजा को तारने वाले हुए ॥ २ ॥

हर्म्यज्योतिर्निशाज्योतिरहज्योतिस्ततोऽधिक ।

गुरुज्योतिश्च येनाहं, तेजः पुंजमयः कृतः ॥ ३ ॥

अर्थ—दीपक, चन्द्र तथा सूर्य से भी गुरु रूपा दीपक अधिक तेज है जिसने कि मुझे तेज तारों के समूह की तरह किया है ॥ ३ ॥

हर्म्यावलंबनं स्तंभो, दंडो वृद्धावलंबनम् ।

देहावलंबनं भोज्यं, भव्यावलंबनं गुरुः ॥ ४ ॥

अथ—जिस प्रकार घर के भार का सहारा स्तम्भ है वृद्ध का सहारा लकड़ी है तथा शरीर का सहारा भोजन है उसी प्रकार भक्तों का सहारा एक मात्र गुरु है ॥ ४ ॥

गुरुर्येश्वर लब्धो वरो वीरनाथः,

सदानन्दमुर्यैर्दशश्रावकैश्च ।

प्रमादात्ततः स्वर्गसौख्यं भजति,

मानुष्यं भव प्राप्य मुक्तौश्वरास्ते ॥ ५ ॥

अथ—घान्त द आदि जा दम श्रावका को आ वीर भावान् जमे उत्तम गुरु के पास भेजा था वे गुरु की कृपा से स्वर्ग के सुखा का भोग रहे हैं । तथा आखिर में मानुष्य भव पार कर मुक्ति के स्वामी हुनि ॥ ५ ॥

## उद्यम प्रकरण

उद्यमेन विना त्रिद्वन् न सिद्धयति मनोरथा ।

तीर्थंकरपदं नेभे, रेवत्युद्यमहेतुतः ॥ १ ॥

अथ—देविज्ञान ! उद्यम विना मनोरथ सिद्ध होता नहीं, क्योंकि उद्यम से ही रेवती ने तीर्थंकर पद प्राप्त किया है ॥ १ ॥

अविष्यतीति यद्भाष्य, वदत्पानम्यदेहिनः ।

शान्तिं श्वेति जल्पति, लभेरन् धमनो जयम् ॥ २ ॥



अर्थ—जो होना होगा वही होगा, इस प्रकार आलसी मनुष्य बोलते हैं और जानी तो यह कहते हैं कि धर्म से जय मिलती है ॥ २ ॥

तं द्रां विहाय कर्तव्यः, प्राणिभिः सर्वथोद्यमः ।

दानगोलतपोभावाः, सार्थाः स्युजिनशासने ॥ ३ ॥

अर्थ—आलस को त्याग कर प्राणियों को सर्व प्रकार से उद्यम करना चाहिये कि जिससे जिन शासन में दान, शील, तप और भावसार्थक हो ॥ ३ ॥

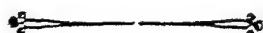
मीनं कृतं मल्लोजिनेन चात्र,

तत्पं तपश्चादिजिनेन तीव्रं ।

नानोपसर्गाः सहितास्तु वीरैः,

कोऽप्युद्यमं वारयितु समर्थः ॥ ४ ॥

अर्थ—यहीं पर मल्लोनाथ प्रभु ने मीन धारण किया था । आदिनाथ प्रभु ने कड़ी तपस्या की थी तथा वीर प्रभु ने तरह तरह के उपसर्ग सहन किये थे, अतः उद्यम का निवारण में कौन समर्थ है ? ॥ ४ ॥



॥ ॐ ह्रीं ग्रहं नमः ॥

## श्री सिन्दूरप्रकर

मंगलाचरण

शादू लविप्रोडितवृत्

सिन्दूरप्रकरस्तप करिशिर क्रोडे कपायाटनी-

दावाचिनिचय प्रबोधदिवसप्रारम्भसूर्योदय ।

मुक्तिम्प्रीवदनंककुब्कुमरस श्रेयस्तरो पल्लव-

प्रोल्लास क्रमयोर्नखद्युतिभर पार्श्वप्रभो पातु व ॥१॥

अथ प्रभु पाशवनाय के दोना पैरो के नखों की काँति का समूह तपस्या रुपी हाथों के भस्त्र के मध्य भाग में सिन्दूर के तिलक के समान प्रोभा है (घोर) कपायम्प्री वन की जलाने के लिये लायाजल (अग्नि) के समूह के समान मालूम होता है । (तथा) शादम्प्रीदिन का प्रारम्भ करने की सूर्य के उदय के समान है । [एव] मुक्तिम्प्री स्त्री के मुख पर रहे हुए कुकुम के तिलक के सदृश है तथा कल्याणम्प्री वृक्ष के लिए नवीन कूपल के समान है । (एतां यह काँति का समूह) तुम मन्त्रों का रक्षण करें ॥ १ ॥

सज्जनों के प्रति प्रयकर्ता का निवेदन-

शादू लविप्रोडितवृत्

सत्ता नतु मम प्रउन्नमनो वाचा विचारोद्यता

तूतेऽम्भ कमनानि तत्परिमल वाता वितन्वन्ति यद् ।

विद्यादम्भयर्नवाऽनया यदि गुणोऽस्त्यासा ततस्ते स्वय,

यनरि० प्रयन न चेदय यन प्रत्यधिना तेन किम् ॥ २ ॥

अर्थ—वाणी के विचार करने में तैयार हुए सत्पुरुष मेरे उपर खुशी मनवाने हों। अथवा इस प्रार्थना से क्या मतलब है? क्योंकि, पानी कमल के पुष्पों को पैदा करता है परन्तु उन कमलों को, वृक्षों को, वायु ही, इधर उधर फैलाती है। इसलिये अगर इन सूक्तियों में कुछ भा गुण हैं, तो वे सत्पुरुष खुद ही इन सूक्तियों के प्रसिद्धि करने वाले हो जायेंगे और यदि इन सुक्तियों में गुण नहीं हैं, तो फिर यज्ञ को कलंकित करने वाले उस विस्तार से याने सुक्तियों की प्रसिद्धि से क्या फायदा है ॥ २ ॥

### त्रिवर्ग में धर्म का प्राधान्य-

उपजातिवृत्त.

त्रिवर्गसंसाधनमन्तरेण, पशोरिवायुर्विफलं नरस्य ।

तत्रापि धर्मं प्रवरं वदन्ति, न वं विना यद् भवतोऽर्थ-  
कामौ ॥ ३ ॥

अर्थ—त्रिवर्ग याने धर्म, अर्थ, काम इन तीनों की साधना के विना मनुष्य का जन्म पशु के समान वृथा है। इनमें भी (महात्मा लोग) धर्म को श्रेष्ठ कहते हैं। क्योंकि धर्म के विना अर्थ और काम नहीं होते हैं ॥ ३ ॥

### मनुष्य जन्म की दुर्लभता

इन्द्रव्रज्जावृत्त.

यः प्राप्य दुष्प्राप्यमिदं नरत्वं,

धर्मं न यत्नेन करोति मूढ ।

क्लेश प्रवन्नेन स लब्धमब्धौ,  
चिन्तामणिं पातयति प्रमादात् ॥ ४ ॥

अर्थ—जो मूख मनुष्य दुःख से मिलने योग्य मनुष्य जन्म को पाकर के प्रयत्न पूर्वक धर्म को नहीं करता है वह मूख चढ़ी तकलीफ से प्राप्त हुए चिन्तामणि रत्न को गफलत से समुद्र में गिरा देता है ॥ ४ ॥

भावाथ—जो कठिनता से मिले हुए मनुष्य जन्म को पाकर ले भी जो धर्म का आचरण नहीं करता है वह महामूख है । तथा वह मानो कठिनता से प्राप्त चिन्तामणि रत्न जैसे नर जन्म को यो ही भव सागर में गवा देता है ॥ ४ ॥

मनुष्य जन्म को व्यर्थ गंवाने वाले की गलतिएँ ।

मन्दाकाता वृत्त

स्वर्णस्थाले क्षिपति स रजः पादशौचं विधत्ते,  
पोयूपेण प्रवरकरिणं वाहयत्यन्धभारम् ।  
चिन्तारत्नं विकिरति कराद्वायसोड्डायनार्थम् ।  
यो दुष्प्रापं गमयति मुधा मर्त्यजन्म प्रमत्तः ॥ ५ ॥

भावाथ—जो मनुष्य कीमती सोने के थाल में यदि धूल भरके रख दे तो उसे दुनियाँ के लोग पागल कहेंगे ऐसे ही जो मनुष्य राजा के बैठने योग्य मस्त हाथी पर लकड़ों का भार

लाददे अथवा मुश्किल से मिलने वाले अमृत से (जो कि पीने को भी मिलना कठिन है ।) अपने पैर धोवे या कौए को उड़ाने के लिए साधारण पत्थर न फेंककर अमूल्य चिन्तामणि रत्न को ही अपने हाथ से फेंक दे तो वह भी पागल हो गिना जायेगा । ठीक इसी तरह यदि कोई मनुष्य अपने अनेक जन्मों के सतकर्मों से प्राप्त मनुष्य जन्म को धर्म सेवन न कर व्यर्थ खो देवे तो उसे भी महात्मा लोग मूर्ख गिनते हैं । सारांश यह है कि मनुष्य जन्म पाकर धर्म का संचय जरूर करना चाहिये ॥ ५ ॥

शार्दूलक्रिवीडितवृत्त.

ते धत्तूरतरुं वपन्ति भवने प्रानमूल्य कल्पद्रुमं,  
चिन्तारत्नमपास्य काचशकलं स्वीकुर्वते ते जडाः ।  
विक्रीय द्विरदं गिरीन्द्रसदृशं क्रीणन्ति ते रासभं,  
ये लब्ध परिहृत्य धर्ममधमा धावन्ति भोगाशया ॥ ६ ॥

सारांश—जो मनुष्य उत्तम धर्म सेवन को छोड़ विषयो को सेवता है वह मानो कल्पवृक्ष जैसे वृक्ष को काट कर उसकी जगह अपने घर में धत्तूरे को लगाता है । रत्न को छोड़ काच के टुकड़े को उठाता है वथा हाथी बेच बदले में गधा खरीदता है । सारांश मनुष्य जन्म धर्मार्थ है, न कि कामार्थ ॥ ६ ॥

शिखरिणीवृत्त.

अपारे संसारे कथमपि समासाद्य नृभवं,  
न धर्म य. कुर्याद्विषयसुखनृणातरलित. ।

ब्रुडन् पारावारे प्रवरमपहाय प्रवहण,

स मुस्यो मूर्खाणामुपलमुषलब्धु प्रयतते ॥ ७ ॥

सारांश—जो मनुष्य नाना पुण्यो के प्रताप से प्राप्त मनुष्य देह को प्राप्त करके इस भव सागर से पार लगाने वाली जहाज के सदृश धर्म का सहाय नहीं लेता है वह महा मूर्ख है ॥७॥

अथगत-इकवीस प्रकरणों के नाम

शाद्रु लवित्रीडितवत

भक्ति तीथकरे गुरौ जिनमते सधे च हिंसानृत-

स्तेयान्नह्यपरिग्रहाद्युपरम क्रोधाद्यरीणा जयम् ।

सौजन्य गुणिसङ्गमिन्द्रियदम दान तपोभावना,

वैराग्य च कुरुष्व निर्वृतिपदे यद्यस्ति गन्तु मन ॥ ८ ॥

अथ—हे भव्य ! यदि मोक्ष पदको पाने की इच्छा हो तो तीथकर प्रभु की तथा गुरु की भक्ति को करो । एवं पवित्र जन धर्म पर तथा जैन सध पर भी श्रद्धाभाव रखो । तथा जीवों को मारना, भूठ बोलना चोरी करना, ब्रह्मचर्य व्रत का नाश करना, और परिग्रह आदि से विरक्त भाव धारण कर क्रोध लोभ, मोह आदि अतर्ग शत्रुओं को जीतना, सज्जनता धारण, गुणवानों की सगति करना, इन्द्रियों का दमन करना, दान देना, तपस्या करना या उसी के समान भावना रखना और वैराग्य का सेवन आदि इन इक्कीस नियमों का पालन करो ॥ ८ ॥

इक्कीस नियमों के नाम— १. तीर्थ कर भक्ति. २. गुरु भक्ति, ३. जिनमत भक्ति, ४. जैन सघ पर श्रद्धा. ५. हिंसा त्याग, ६ असत्य त्याग, ७. चौर्य त्याग, ८. विषय भोग त्याग, ९. परिग्रह शांति, १०. क्रोध, ११. मान, १२. माया १३. लोभ आदि शत्रुजय १४. सौजन्य धारण, १५ गुणियो का संग, १६. इन्द्रिय दमन, १७. लक्ष्मी का स्वभाव, १८. दान का उपदेश, १९. तपस्या, २०. वैराग्य की भावना ।

## जिन पूजन प्रकरण

शार्दूलविक्रीडितवृत.

पापं लुम्पति दुर्गतिं दलयति व्यापादयत्यापदं,  
पुण्यं संचिनुते श्रियं वितनुते पुष्पाति नोरोगताम् ।  
सौभाग्यं विदधाति पल्लवयति प्रीतिं प्रसूते यशः,  
स्वर्गं गच्छति निर्वृतिं च रचयत्यर्चाहितां निर्मिता ।६।

अथ—श्री अर्हन् भगवानो की कीहुई पूजा पाप को काट देती है खराब गति को मिटा देती है, आपत्ति को नष्ट कर देती है, पुण्यो को इकट्ठा करती है, लक्ष्मी को फैलाती है, आरोग्यता को पुष्ट कर देती है, सुख को देती है, प्रीति को बढ़ाती है, कीर्ति को उपजाती है, स्वर्ग को देती है । मोक्ष मार्ग को बनाती है ।

स्वगस्तस्य गृहाङ्गण सहचरो साम्राज्यलक्ष्मी शुभा,  
सौभाग्यादि गुणावलिबिलसति स्वैर वपुर्वेष्मनि ।

ससार सुतर शिव करतलक्रोडे लुठत्यञ्जमा,

य श्रद्धाभरमाजन जिनपते पूजा विधत्तेजन ॥१०॥

अथ—जो मनुष्य श्रद्धायुक्त चित्त से जैसे हो वैसे ही भगवान् जिनद्र की पूजा को करता है उस मनुष्य के घर का आगन स्वर्ग समान हो जाता है । तथा कल्याणकारक साम्राज्य रूप लक्ष्मी (उसकी) साथ रहने वाली स्त्री के समान हो जाती है । उसके देह रूपो घर में सौभाग्य संपत्ति आदि गुणों की पक्ति स्वतन्त्र जैसे हा वैसे विहार करती है तथा उसके लिए ससार रूपी समुद्र सुख से तरने योग्य हो जाता है । और साधन रूप मोक्ष उसके हथेली में ही भट से लौटने लग जाता है ॥ १ ॥

शिखरिणीवृत

कदाचिन्नातङ्क कुपित इव पश्यत्यभिमुख,

विदूरे दारिद्र्यं चकितमिव नश्यत्यनुदिनम् ।

विरक्ता कान्तेव त्यजति कुगति सङ्गमुदयो,

न मुञ्चत्यभ्यर्णं सुहृदिव जिनार्चा रचयत ॥ ११ ॥



अर्थ—जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने वालों के बीमारी गुस्से में हो जाती है। जैसे कभी भी सामने नहीं देखती है। तथा गरीबी भयभीत हो गई हो जैसे हमेशा दूर ही से नष्ट हो जाती है एवं खराब गति विरक्त हुई स्त्री के जैसे सग को छोड़ देती है। और उन्नति मित्र के जैसे समीपता को नहीं छोड़ती है।

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

यः पुष्पैर्जिनमर्चति स्मितसुरस्त्रीलोचनैः सोऽर्च्यते,  
यस्तं वन्दत एकगस्त्रिजगता सोऽर्हनिशं वन्द्यते ।  
यस्तं स्तौति परत्र वृत्रदमनस्तोमेन स स्तूयतेः  
यस्तं ध्यायति क्लृप्तकर्मनिधनः स ध्यायते योगिभिः॥१२॥

अर्थ—जो पुरुष पुष्पहार से श्री जिनेन्द्र भगवान को पूजता है वह हास्यमुखवाली देवागनाओं के नयनों से पूजा जाता है। तथा जो जिनेन्द्र भगवान को एकवार वन्दना करता है, रात दिन त्रिलोकी के मनुष्यों द्वारा वन्दित होता है। एवं जो उन जिन भगवान की स्तुति करता है। वह परलोक में इन्द्रादिकों के समूह से स्तुति किया जाता है। और जो उन भगवान को ध्याता है वह कर्मों का नाश करके योगी महात्माओं द्वारा भी ध्याया जाता है।

## गुरु महत्व प्रकरण

वंशस्थवृत्त

अवद्यमुक्ते पथि यः प्रवर्तते, प्रवर्तयत्यन्यजनं च निस्पृहः।  
स एव सेव्यः स्वहितैर्पिणा गुरुः स्वयं तरंस्तारयितुं क्षमपरम्

अथ—प्रपन्ना कल्याण चाहने वाले पुरुष से वही आचार्य सेवने योग्य है जो निर्दोष माग पर चलता है तथा निष्काम होकर दूसरे मनुष्य को भी उस सत्य माग पर चलाता है एव । पुनः भवसागर से तरता हुआ दूसरो को भी भवसागर से तराने में समर्थ है ।

### मालिनीवत

विदलयति कुत्रोव भोधयत्यागमार्थ,  
सुगतिकुगतिमार्गो पुण्यपापे व्यनक्ति ।  
अवगमयति कृत्याकृत्यभेद गुरुर्यो,  
भवजलनिधिपोतस्त विना नास्ति रुश्रित ॥ १४ ॥

अथ—जो आचार्य अज्ञान को नाश करता है, शास्त्रो के तत्त्व को समझाता है । सद्गति एव असद्गति के माग स्वरूप पुण्य और पाप को पृथक्-पृथक् करता है । तथा कृत्याऽकृत्य के भेद का हृदयगत भेद करता है । उस गुरु के बिना दूसरा कोई भी भवसागर से पार लगाने वाला जहाज नहीं है ।

सारांश—इस संसार में सत्य के भेद को बताने वाला तथा अपार भवपारावार से पार लगाने वाला जहाज के समान केवल गुरुदेव ही है । ॥ ४ ॥

पिता माता भ्राता प्रिय सहचरी सूनुनिवहः,

सुहृत्स्वामी माद्यत्करिभटरथाश्वः परिकरः ।

निमज्जन्तं जन्तुं नरककुहरे रक्षितुमलं,

गुरोर्धमाधर्मप्रकटनपरात्कोऽपि न परः ॥ १५ ॥

अर्थ—धर्म और अधर्म को बताने वाले गुरु से बढ़कर कोई भी मनुष्य नरक कुण्ड में डूबते हुए प्राणी को बचाने को समर्थ नहीं है । ज्यादा क्या खास प्राण प्रिया स्त्री पुत्रो का समूह मित्र (तया) मदोन्मत्त हाथी, घोड़े और योद्धा वाला स्वामी एव अन्य कुटवी जन भी । ऐसे प्राणी को नरक से बचाने में असमर्थ है ।

शार्दूलविक्रीडितकृत

किं ध्यानेन भवत्वशेषविषयत्यागैस्तपोभिः कृतं,

पूर्णं भावनयालमिन्द्रियदमैः पर्याप्तिमाप्तागमैः ।

किंत्वेकं भवनाशनं कुरु गुरुप्रीत्या गुरोः शासनं,

सर्वे येन विना विनाथवलवत्स्वार्थाय नाल गुणा । १६ ।

अर्थ—प्रभु ध्यान से क्या प्रयोजन है । संपूर्ण विषयवासना के त्याग से कुछ मतलब नहीं तपस्याओं करने से ही सद्भावना से भी कुछ होने का नहीं । इन्द्रियनिग्रह से भी सिद्ध होने का नहीं । विश्वस्त शास्त्रों से भी आवश्यकता नहीं । किंतु ससार

रूप सागर को पार लगाने वाला । एक गुरु के आदेश को बड़े प्रेम से पालन करो । क्योंकि जिसके बिना सभी गुण बिना मालिक की सेना के जैसे अपना काय सिद्ध करने के लिए भी समर्थ नहीं हैं ।

## जिनमतप्रकरणम्

शिखरिणीवृत

न देव नादेव न शुभगुरुमेव न कुगुरु,  
न धर्मं नाधर्मं न गुणपरिणद्ध न विगुणम् ।  
न कृत्य नाकृत्य न हितमहित नापि निपुण,  
विलोकन्ते लोका जिनवचनचक्षुर्विरहिता ॥ १७ ॥

अथ—भगवान् जिनेन्द्र के उपदेश रूपी आखों के बिना मनुष्य नहीं तो अच्छे देव का और नहीं बुरे देव को । नहीं तो अच्छे गुरु को, नहीं खराब गुरु को । नहीं तो धर्म को और न अधर्म को । नहीं गुणवान् को और न गुण रहित को । नहीं तो कर्तव्य को और न अकर्तव्य को । नहीं तो भले को और नहीं बुरे को । अच्छी तरह से देख सकते हैं ॥ १७ ॥

शाद्रु लविक्रीडितवृत

मानुष्य विफल वदन्ति हृदय व्यर्थं वृथा श्रोत्रयो-  
निर्मणि गुणदोषभेदकलना तेषामसभाविनीम् ।

दुर्वारं नरकान्धकूपपतनं मुक्तिं ब्रुवा दुर्लभां,  
सर्वज्ञः समयो दयारममयो येषां न कर्णार्तिथि ॥१८॥

अर्थ—दयारस से ओत-प्रोत भगवान् सर्वज्ञ जिनदेव का, उपदेश जिन मनुष्यों के कर्णकुहरो में प्रविष्ट नहीं हो सका है। पंडित लोग उन मनुष्यों के मनुष्य जन्म को फिजूल बताते हैं। तथा उनका हृदय भी वेमतलव का बताते हैं। उनके कानों की बनावट भी निक्कमी है। उनकी गुण दोषों की निरूपण की व्यवस्था असंभवित ही है। उनका नरक के अग्नि कुएं में गिरना दूर नहीं हो सकता है। तथा ज्यादा क्या हैं? उन्हें मुक्ति मिलना कठिन है।

शार्दूलविक्रीडितवृत

पीयूषं विषयज्जलं ज्वलनवक्त्रे जस्तमस्तोमव-  
न्मित्रं शात्रववत्स्त्रजं भुजगवच्चिन्तामणिं लोष्ठवत् ।  
ज्योत्स्नां ग्रीष्मजघर्मवत् स मनुते कारुण्यपण्यापणां,  
जैनेन्द्रं मतमन्यदर्शनसमं यो दुभतिर्मन्यते ॥ १९ ॥

अर्थ—जो मूर्ख दया की दुकान के जैसे भगवान् जिनदेव के धर्म को दूसरे धर्म के समान ही मानता है, वह मूर्ख अमृत को जहर के सदृश, पानी को अग्नि के समान प्रकाश को अंधेरे के तुल्य, हितैषी को दुष्मन के बराबर, पुष्पहार को साप के जैसे, अमूल्य चिन्तामणि नाम के रत्न को ढले के समान तथा चन्द्रमा की निर्मल कान्ति को गर्मी की मांसम धूप के समान मानता है।

धर्म जागरयत्यघ विघटयत्युत्थापयत्युत्पथ,  
 भि ते मत्सरमुच्छिनत्ति कुनय मथ्नाति मिथ्यामतिम्।  
 वैराग्य वितनोति पुण्यति कृपा मुष्णाति तृष्णां च य-  
 त्तज्जैन मतमर्चति प्रथयति ध्यायत्यधीते कृती ।२०।

अथ—विद्वान् पुरुष जिस जैन धर्म को पूजते हैं, प्रशंसित करता है, ध्याता है और पढाता है। वह जन धर्म मनुष्य के मानवी कर्तव्य को जागृत करता है, पाप को नष्ट करता है, कुर्मणि को मिटाता है, ईर्ष्या डाहको दूर करता है। अयाय को उखाड़ फेंकता है। मिथ्यात्व बुद्धि को मथकर नष्ट कर देता है, वराग्य की भावना को फलाता है, कृपा को पुष्ट करता है, तथा मानसिक मृगतृष्णा को चुरा देता है ॥२०॥

### (४) सघप्रकरणम्

शादू लविश्रीडितकृत

रत्नानामिव रोहणक्षितिधर ख तारकाणामिव,  
 स्वर्ग कल्पमहोरुहामिव सर पङ्केरुहाणामिव,  
 पाथोधि पयसामिवेन्दुमहसा स्थान गुणानामसा-  
 वित्यालोच्य विरच्यता भगवत सघस्य पूजाविधि ।२१।

अथ—अमूल्य रत्ना को पैदा करने वाला रोहणाऽवल नाम पहाड़ के समान ताराभा वे लिये आकाश के समान कल्पवृक्षों के

लिये स्वर्ग के समान कमलों के लिये तालाव के समान चन्द्रमा के समान उज्ज्वल, जलो के लिये समुद्र के जैसा सम्पूर्ण गुणों का जन्म स्थान है । ऐसा सोचकर के भगवत्स्वरूप श्री सध की पूजन करिये ॥२१॥

शार्दूलविक्रीडितवृत

यः संसारनिरासलालसमतिर्मुक्त्यर्थमुत्तिष्ठते,

यं तीर्थं कथयन्ति पावनतया येनास्ति नान्यः समः ।

यस्मै तीर्थपतिर्नमस्यति सतां यस्माच्छुभं जायते,

स्फूर्तिर्यस्य परावसन्ति च गुणा यस्मिन् स संघोऽर्च्यताम् ॥२२॥

अर्थ—जो (श्री सध) संसार को छोड़ने के लिये लालसा बुद्धिवाला होता हुआ मोक्ष के लिए प्रयत्न करता है और भाविक लोग जिस सध को अत्यन्त पवित्र होने से तीर्थ स्वरूप कहते हैं । तथा जिसके बराबर इस संसार में दूसरा कोई नहीं है । जिसको तीर्थकर देव भी नमस्कार करते हैं । जिससे सत्पुरुषों का कल्याण होता है । और जिसकी अति उत्तम महिमा है जिस श्री सध में अनेकागुण निवास करते हैं उस सध की तुम पूजा करो ॥२२॥

शार्दूलविक्रीडितवृत

लक्ष्मीस्तं स्वयमभ्युपैति रभसा कीर्तिस्तमालिङ्गति,

प्रीतिस्तं भजते मतिः प्रयतते तं लब्धुमुत्कण्ठया ।

स्व श्रोस्त परिरब्धुमिच्छति मुहुर्मुक्तिस्तमालोकते,  
य सध गुणराशिकेलिसदन श्रेयोरुचि सेवते ॥ २३ ॥

अथ—अपने कल्याण को चाहने वाला जो मनुष्य नाना गुणों के ओझा स्थान श्री सव को सेवता है उस मनुष्य को धन दौलत खुद ही प्राप्त होती है। इज्जत उसको जोर से आलि गन करती है, दिव्य प्रेम स्वयं ही उसके पास दौड़ा आता है। बुद्धि उस पुरुष को पाने को इच्छा पूर्वक प्रयत्न करती है। स्वर्ग लोक की राज्यलक्ष्मी उसको भेटने को चाहती है और मोक्ष उसको बारबार देखता है ॥ २३ ॥

शादू लविकाडितवत

यद्भुक्ते फलमर्हदादिपदवी मुरय कृपे सस्यव—

चक्रित्वत्रिदशेद्रतादि तृणवत्तासङ्गिक गीयते ।

शक्ति यन्महिमस्तुतौ न दधते वाचोऽपि वाचस्पते ,

सध सोऽनहर पुनातु चरणन्यासैः सता मन्दिरमा २४।

अथ—खेतों के लिए घास की तरह जिस श्री सध की भक्ति का प्रधान लाभ तीर्थ कर आदि दुर्लभ पद को पाना है और सात्र भीम चक्रवर्तीपना तथा इन्द्रपद आदि तो घास की तरह गौण गिना जाता है। जिसकी महिमा की स्तुति करने में स्वयं देव गुरु बृहस्पति की वाणी भी ताकत को नहीं रखती है। पापों को हरने वाला वह श्री सध अपने पैरा रखकर सत्पुरुषों के घरों को पवित्र करें ॥ २४ ॥



## (५) अहिंसा प्रकरणम्

शादूलविक्रीडितवृत

क्रीडाभूः सुकृतस्य दुष्कृतरजः संहारवात्याभवो—

दन्वन्नीर्व्यसताग्निमेघपटली सकेतदूती श्रियाम् ।

निःश्रेणिस्त्रिदिवौकसः प्रियसखो मुक्तेः कुगत्यर्गला

सत्त्वेषु क्रियतां कृपैव भवतु क्लेशैरशेषैः परैः ॥२५॥

अर्थ—पुण्य की क्रीड़ास्थली पापरूप रज को उड़ाने वाली  
आँधी, ससार सागर से पार लगाने वाली नाव दुःखरूप-  
दावाऽनल को बुझाने वाली घनघोर घटा, सौभाग्य को मिलाने  
वाली स्वर्ग की निसरणी ! मुक्ति की प्यारी साथिन, दुर्गति की  
आगल सरोखी दया ही प्राणियो पर करो । दूसरे कष्टों से कुछ  
भी न हाना है । ॥ २५ ॥

शादूलविक्रीडितवृत

यदि ग्रावा तोये तरति जरणिर्यद्युदयति,

प्रतीच्यां सप्तार्चिर्यदि भजति शैत्य कथमपि ।

यदि क्षमापीठं स्यादुपरि सकलस्यापि जगत ,

प्रसुते सत्त्वानां तदपि न वध. क्वापि सुकृतम् ॥ २६ ॥

अर्थ—पत्थर की चट्टान भी शायद पानी पर तर जायँ, सूर्य  
शायद पश्चिम में उदय हो जायँ, किसी प्रकार शायद अग्निदेव

भी ठंडे हो जाये, शायद पथ्वी मंडल भी समूचे ससार के ऊपर हो जायें । परन्तु तो भी प्राणियों की हिंसा कहीं पर भी पुण्य को पैदा नहीं करती हैं । ॥ २५ ॥

मालिनोवृत

स कमलवनमग्नेर्वासर भास्वदस्ता—

दमृतभुरगवक्त्रात् साधुवाद विवादात् ।

रुगपगममजीर्णाज्जिवीवित कालकूटा—

दभिलपति वधाद्य प्राणिना धर्ममिच्छेत् ॥ २७ ॥

अथ—जो जीवा को मारने से धर्म को चाहता है, वह (मानो) अग्नि के अदर से कमला के वन की उत्पत्ति को, अस्त होते हुए सूर्य से दिन की उत्पत्ति को, सप के मुह से अमृत को, लडाईं स शाबाशी को, अजीर्ण से रोग की शांति को और कालकूट नाम के भयकर विष से जीवन को चाहता है ॥२७॥

शादू नविक्रीडितवत

आयुर्दीर्घन्तर वपुर्वन्तर गोत्र गरीयस्तर,

वित्त भूरितर बल बहुतर स्वामित्वमुच्चैस्तरम् ।

आरोग्य विगतान्तर त्रिजगति श्लाघ्यत्वमत्पेतर,

ससाराम्बुनिधि करोति सुतर चेत कृपाद्रान्तरम् ॥२८॥

अथ—कृपा से भोजा हुआ अन्न करण (मनुष्य की) आयुष्य को लम्बी करता है । शरीर को सुन्दर करता है, वश को महीमा

वाला करता है, धन को बढ़ा देता है, ताकत को अधिक करता है, मालिकपने को बहुत ऊँचा करता है । तंदुस्ती को निरन्तर रहने वाली करता है । तीनों लोको मे अतिशय प्रशंसा को करता है । और मसार रूपी समुद्र को सुख से तरने योग्य करता है । ॥ २८ ॥

## सत्यप्रकरणम्

शादूलक्रिवीडितवृत्त.

विश्वासायतनं विपत्तिदलनं देवैः कृताराधनं,  
मुक्तेः पथ्यदनं जलाग्निशमनं व्याघ्रोरगस्तम्भनम्,  
श्रेयः संवननं समृद्धिजननं सौजन्यसंजीवनम्,  
कीर्तेः केलिवनं प्रभावभवनं सत्यं वचः पावनम् ॥२९॥

अर्थ—विश्वास का स्थान विपत्ति को दूर करने वाला  
देवताओं से भी आराधना किया हुआ मुक्ति के मार्ग में खुराक  
(भातारूप) जल और अग्नि का शमन करने वाला, व्याघ्र और  
सर्प को रोकने वाला कल्याण को वशीभूत करने वाला,  
सज्जनता को जिलानेवाला, कीर्ति को क्रिड़ोद्यान और महिमा  
का आगार पवित्र एक सत्य वचन ही है ॥ २९ ॥

शिखरिणीवृत्त

यशो सस्माद्भूस्मोभवति वनवह्नरिव वनं,  
निदानं दुःखानां यदवनिर्हाराणां जलमिव ।

न यत्र स्थाच्छायाऽनप इव तप सयमक्या,

कथञ्चित्तन्मिथ्यावचनमभिघत्ते न मतिमान् ॥ ३० ॥

अथ—दाघाऽनल में जैसे जगल राख मय हो जाता है वो  
ही अमत्य भाषण से भीति नष्ट हो जाती है और जो असत्य  
भाषण वृक्षा के लिए जन के जैसे दुखों का प्रधान कारण है  
और जहाँ घूप में छाया के जैसे तपस्या और इन्द्रियनिग्रह की  
बात तब नहीं है। ऐसे उम्र अमत्य भाषण का बुद्धिमान आदमी  
किसी से भी नहीं कहता है ॥ ३० ॥

वशस्यवृत्त

असत्यमप्रत्ययमूलकारण, युवाननाद्य समृद्धिवारणम् ।  
विपत्तिदानपरयश्चनोजित, कृतापराध वृत्तिभिर्विवर्जितम् ॥ ३१ ॥

अथ—अविश्वास का प्रधान कारण बुरी वाग्वानाया का  
ध्यान, अपत्ति और सुख समृद्धि को रोकन वाला। आपत्ति का  
मुख्य कारण हमारे का ठगने में समर्थ तथा अपराध युक्त, ऐसा  
असत्य मिथ्या भाषण पड़ता है त्याज्य है ॥ ३१ ॥

शादू नविद्रोहितवत

तस्याग्निर्जनमण्य स्वयमरिमित्र नुरा किङ्करा,

कान्तार नगर गिरिगृहमहिर्मात्य मृगारिमृग ।

पातान विनमस्त्रमुपनदन व्यान गुणानो विष,

पातृप विषम नन न यत्तन मत्वाञ्जित यक्ति य ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो पुरुष सत्य युक्त वचन कहता है उसके लिए  
 आग पानी की तरह शीतल हो जाता है अथाह समुद्र जमीन  
 के समान हो जाता है, दुष्मन भी दोस्त के सदृश्य हो जाता है,  
 सब देवता भी नीकरो के तुल्य हो जाते हैं वीहड़ जंगल भी  
 शहर के समान हो जाता है, पहाड़ के घर तुल्य हो जाता है,  
 साँप पुष्प माला के समान हो जाता है, सिंह हरिण के अनुरूप  
 हो जाता है, भयकर पाताल साधारण छिद्र के तुल्य हो जाता  
 है, तीक्ष्ण धार अस्त्र (तलवार आदि) भी कमल हो जाता है,  
 दल के समान सुख हो जाता है, पागल हाथी सियार के सदृश्य  
 उल्टा उससे डरने वाला हो जाता है। जहर अमृत के तुल्य हो  
 जाता है उसी प्रकार उल्टा भी मुल्टा हो जाता है ॥ ३२ ॥

## अस्तेय प्रकरणम्

मालिनीकृत

तमभिलषति सिद्धिस्तं वृणीते समृद्धि—

स्तमभिसरति कीर्तिमुञ्चते तं भवतिः ।

स्पृह्यति सुगतिस्तं नेक्षते दुर्गतिस्तं,

परिहरति विपत्तं यो न गृह्णात्यदत्तम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—जो मनुष्य नहीं दिया हुआ ग्रहण नहीं करता है।  
 आपति उस पुरुष को छोड़ देती है। बुरी गति उसकी तरफ

नही देखती है । सद्गति उसको चाहती है । ससार की सारी  
 पोडाएँ उसको छाड़ देती है । यज्ञ उसकी ओर घाना है सुख  
 सपति उसको अशीकार करती है और अणिमादिक आठ  
 सिद्धिए उसकी अभिलाषा करती हैं ॥ ३३ ॥

शिखरिणोवृत

अदत्ता नादत्ते कृतसुकृतकाम किमपि य  
 शुभश्रेणिस्तस्मिन् वसति कलहसीव कमले ।  
 विपत्तस्माद्दूर व्रजति रजनीवाम्बरमणो—

विनीत विद्येव त्रिदिवशिवलक्ष्मीर्भजति तम् ॥ ३४ ॥

अथ—जिसने पुण्य प्राप्त करने का मनोरथ किया है कुछ भी  
 नहीं दिया हुआ नहीं ग्रहण करता है उस पुरुष के अदर  
 कल्याण की पत्ति कमल वन में बलहस पक्षी की स्त्री के जैसे  
 निवास करती है । तथा उस पुरुष से मकट दूर रहता है ।  
 मूय से रात दूर जाती है तथा अलोवय की शुभ राज्य लक्ष्मी  
 भी जान नमता को प्राप्त हो जाती है उसे उस पुरुष को भजती  
 भेजती है ॥ ३४ ॥

शाद्रू लक्ष्मीर्द्वितवृत

यन्निर्वर्तितकीर्तिधर्मनिधन सर्वांगसा साधन,  
 प्रान्मोलद्वधप्रन्धन विरचितविलप्टाशयोद्बोधनम् ।  
 रोगत्यक्निवन्धन कृतसुगत्याश्लेषन रोधन,  
 प्रो मर्पत्प्रधन जिघृक्षति न तद्धीमानदत्त धनम् ॥ ३५ ॥



## (८) शीलप्रकरणम्

शादू लविक्रीडितवृत

कामात्त स्तयजति प्रबोधयति वा स्वस्त्री परस्त्री न यो  
दत्तस्तेन जगत्यकीर्तिपटहो गोत्रे मपोकूर्चक—

श्वारिनस्य जलाञ्जलिगुणगणारामस्य दावानल ,  
सकेत सकलापदा शिवपुरद्वारे कपाटो दृढ ॥ ३७ ॥

अथ—जो कामासक्त पुरुष अपनी पत्नी का नहीं समझता  
है और परायी पत्नी को नहीं छोड़ता है, उस पुरुष ने समार में  
अपयश का नगाड़ा बजाया है और अपने कुल में कालिख का  
पोता लगाया है, एव सच्चारत्र के ऊपर पानी की अजलि  
रेल दी है, तथा गुणों के समूह रूप उपवन के लिए दामाग्नि  
के सदृश्य ही संपूर्ण आपत्ति के लिए इशारे का स्थान है। शिव  
मोक्ष मार्ग के द्वार पर मजबूत विवाह के समान हैं अर्थात् मोक्ष  
जाने का द्वार उसके लिए बंद है । ३७ ॥

शादू लविक्रीडितवृत

व्याघ्रव्यालजलानलादिविपदस्तेषां व्रजति क्षय,  
पत्याणामि समुत्तलसन्ति विबुधा सान्निध्यमध्यासते ।  
कीर्ति स्फूर्तिमियति यात्युपचय धर्मं प्रणव्यत्यघ,  
म्वनिवणिगुणानि सनिदधते ये शीलमाविभ्रते ॥ ३८ ॥



अर्थ - जो मनुष्य सच्चरित्र को धारण करने हैं । उन पुरुषों की व्याघ्र, साँप, जल, अग्नि आदि की विपत्तिएं नष्ट हो जाती हैं । कल्याण के कर्म विकसित हो जाते हैं । देवता लोग उनके पास आने को करते हैं । बड़ाई फँनाव को प्राप्त होती है । उनका धर्म भी वृद्धि को प्राप्त होता है । पाप नष्ट हो जाते हैं, तथा स्वर्ग और मोक्ष इनके मुख भी जीलवारी पुरुष को प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥

### मालिनीवृत

हरति कुलकसङ्कं लुम्पते पापपङ्क,  
सुकृतमुपचिनोति श्लाध्यतामातनोति ।  
नमयति सुरवर्गं हन्ति दुर्गोपसर्गं  
रचयति शुचि गोलं स्वर्गमोक्षी सलीलम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—सत् चरित्र, खानदान के कुलक को हरण करता है । पापपुरुषों कीचड़ को धो डालता है, पुण्यों को बढ़ाता है, प्रशंसा को फँनाता है, देवताओं को भी भुक्तादेता है, भयकर उपद्रवों को मिटा देता है, स्वर्ग और मोक्ष को भी लीला से ही जमे हो तैसे बना देता है ॥ ३९ ॥

### शार्दूलविक्रीडितवृत

तोयत्यग्निरपि स्वजत्यहिरपि व्याघ्रोऽपि सारङ्गति,  
व्यालोऽप्यश्वति पर्वतोऽप्युपलति क्ष्वेडोऽपि पोयूपति ।

त्रिघ्नोऽभ्युत्तमवति प्रियत्यरिरपि क्रीडातडागत्यपां-

नाथोऽपि स्वगृहृत्यव्यपि नृणां शीलप्रभावाद् ध्रुवम् ॥४०॥

अथ—मनुष्या के सत्स्वभाव के प्रताप से निश्चय करके आग भी पानी के समान शीतल बन जाता है । साप भी माला के समान लोभायमान बन जाता है । खूंखार बाघ भी हरिण के समान सीढ़ा बन जाता है । दुष्ट हाथी भी छोटे से नृत्य सुखारोह हो सकता है । ऊँचा गहाड भी छोटे पत्थर के सदृश हो जाता है । जहर भी अमृत बन जाता है । उपद्रव भी उत्सव के सरीखा हो जाता है । शत्रु भी मित्र के समान हो जाता है । समुद्र भी क्रीडा सरोवर बन जाता है, और जंगल भी अपना घर हो जाता है ॥ ४० ॥

### (६) परिग्रहत्यागप्रकरणम्

शादू लविकोडितवृत्त

कालुष्य जनयन् जडस्य रचयन् धर्मद्रुमोन्मूलन,

विलप्यन्नितिकृपाक्षमाकमलिनीलोभाम्बुधि वर्धयन् ।

मर्यादातटमुद्रुजन् शुभमनोहसप्रावास दिश-

न्कि न क्लेशकर परिग्रहणादीपूर प्रवृद्धि गत ॥ ४१ ॥

अर्थ—वृद्धि को प्राप्त हुआ परिग्रह याने हर एक वस्तु का विशेष संग्रह वह मानो एक तरह को नदी उसका प्रवाह मूल पुरुष के चित्त में पाप प्रकृति को उपजाता हुआ, तथा धर्मरूपी वक्ष का नाश करता हुआ एवं नीति, कृपा और क्षमा रूपा कमलों की बनावली को मुरझाना हुआ लोभ रूपी समुद्र को बढ़ाता हुआ और भी मर्यादा रूपी तीर को तोड़ता हुआ एव सात्त्विक विचार रूपी हंस को परदेश भेजता हुआ क्या दुःख पैदा करने वाला नहीं है ? अपितु ऐसा परिग्रह जरूर दुःखदायी ही है ॥ ४१ ॥

मालिनोवृत

कलहकलभवीन्ध्यः क्रोवगृध्रममानं,

व्यसनजगभुरंध्रं द्वेपदस्युप्रदोषः ।

सुकृतवनदवाग्निमर्दिवाम्भोदवायु—

नयनलिनतुपारोऽत्यथंमथानुरागः ॥ ४२ ॥

अर्थ—अत्यन्त ज्यादा परिग्रह का प्रेम कलह लड़ाई रूपी हाथी के बच्चे के लिए विन्ध्याचल पहाड़ के समान है क्रोव रूपी गोघ के लिये मसाला के तुल्य है । दुःख रूपी सांप के लिये बिल के सदृश है । द्वेपरूपी चोर को सुख देने के लिये रात के चुरायात के समान है । पुण्य रूपी वन को जलाने के लिये दावानल अग्नि है । सज्जनता रूपी वादल के लिए वायु है और न्याय रूपी कमल के लिए वर्ष के सहग है ॥ ४२ ॥

प्रत्यर्थी प्रशमस्य मित्रमधृतेर्मोहस्य विश्रामभू ,  
पापाना खनिरापदा पदममद्वयानस्य लीलावनम् ।  
व्याक्षेपस्य निविर्मदस्य सचिव शोकस्य हेतु कले ।  
केलिवेश्म परिग्रह परिहतेर्योग्यो विविक्तात्मनाम् ॥४३॥

अथ—जो शान्ति का शत्रु है, अधोरता का मित्र है, अज्ञान का विश्राम स्थान है, पापों की खान है, आपत्तियों का स्थान है, घुरे विचारों का खेलने का बगीचा है, घबराहट का खजाना है, पागलपन (अभिमान) का मंत्री है, दुःख का कारण है और लड़ाई का क्रीडा निवेतन है । ऐसा वह अधम परिग्रह ससार त्यागियों के वास्ते सबथा छोड़ने के लायक है ॥४३॥

शादू लविक्रीडितकृत

वह्निस्तृप्यति नेधनैरिह यथा नाम्भोभिरिम्भोनिधि-  
स्नद्वल्नाभघनो धनैरपि धनैजन्तुर्न सतुष्यति ।

नत्वेव मनुते विमुच्य विभव नि शेषमन्य भव,

यात्यात्मा तदह मुदैव विदधाम्येनासि भूयासि किम् ॥४४॥

अथ—जैसे इस ससार में अग्नि काष्ठ आदिक से तृप्त नहीं होता है और समुद्र जैसे पानी से तृप्त नहीं होता है । वैसे ही अत्यन्त लोभी प्राणी बहुत ज्यादा भी धन से सतुष्ट नहीं होता

है फिर भी इस तरह नहीं विचारता है कि यह जीव सपूर्ण धन को यही छोड़कर दूसरे भव को प्राप्त होता है तो मैं व्यर्थ ही इतने ज्यादा पापों को क्यों करूँ ? ॥४४॥

## (१०) क्रोधत्याग प्रकरणम्

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

यो मित्रं मधुनौ विकारकरणे संत्राससंपादने,  
सर्पस्य प्रतिबिम्बमङ्गदहने सप्ताचिषः सोदरः ।  
चतन्यस्य निषूदने विषतरोः सन्नह्याचारी चिरं,  
स क्रोधः कुशलाभिलाषकुशलैः प्रोन्मूलमुन्मूल्यताम् ॥४५॥

जो क्रोधः विगाड़ करने में तो शराब का दोस्त है, भय पैदा करने में साँप का प्रतिबिम्ब है, शरीर को जलाने में अग्नि का सगा भाई है, चेतनता को दूर करने में विष वृक्ष का सहपाठी है। ऐसा वह क्रोध अपना कुशल चाहने वाले पुरुषों से जड़ से जंसे हो तैसे उखाड़ कर फेंकना चाहिए ॥४५॥

हरिणीवृत्त

फलति कलितश्रेयः श्रेणीप्रसूनपरम्परः,  
प्रशमपयसा सिक्तो मुक्ति तपश्चरणद्रुमः ।  
यदि पुनरसौ प्रत्यासत्ति प्रकोपहविर्भुजो—  
भजति लभते भस्मीभावं तदा विफलोदयः ॥ ४६ ॥

अथ—यह तपश्चर्यारूपी वृक्ष को यदि शान्तिरूपी पानी से सींचा जाय तो सुन्दर कल्याण की श्रेणी रूपी पुष्प परम्परा से युक्त हो सके। मुक्ति रूपी फल को उत्पन्न करता है परन्तु यह भी यदि क्रोध रूपी अग्नि की समीपता को सेवता है। तो फल रहित होकर उल्टा भस्मीभूत हो जाता है याने जलबल के राख हो जाता है। सारांश यह है कि तपस्या शान्ति से सफल होती है और क्रोध से बिल्कुल नष्ट हो जाती है। अतः मुक्ति चाहने वाले के लिए यह योग्य है कि वे क्रोध का परित्याग कर शान्ति को धारण करें ॥४६॥

शादू लविक्रीडितवृत्त

सताप तनुते भिनत्ति विनय सौहार्दमुत्सादय—

त्युद्वेग जनयत्यवद्यवचन सूते विघत्ते कलिम् ।

कीर्ति कृन्तति दुर्मति वितरित व्याहन्ति पुण्योदय,

दत्तेय कुर्गति स हातुमुचितो रोप सदोष सनाम् ॥४७॥

अथ—जो क्रोध सताप को फलाता है नम्रता को दूर करता है मित्र भाव को मिटाता है, दुःख को पैदा करता है, भूठे भाषण को उत्पन्न करता है, कलह करता है, कीर्ति को काटता है दुष्ट बुद्धि को बढाता है, पुण्य के उदय को रोकता है और दुर्गति को प्रदान करता है, वह क्रोध दोषयुक्त है। अतः सत्पुरुषों के लिए छोड़ने योग्य है ॥४७॥

यो धर्मं दहति द्रुमं दध इवोन्मथ्नाति नीतिं लतां,  
दन्तीवेन्दुकलां विधुन्तुद इव विलम्बनाति कीर्तिं नृणाम् ।  
स्वार्थं वायुरिवाम्बुदं विघटयत्युल्लासयत्यापदं,  
तुष्णां धर्मं इवोचितः कृतकृपालोपः स क्रोधः । यम् ॥४८॥

अर्थ—जिस प्रकार वन की अग्नि वृक्ष को जलाती है उसी प्रकार क्रोध धर्म को जलाना है । हाथी बैल की तरह जो नीति (न्याय) को मथता है, राहु चन्द्रमा को कला को मनुष्यों को कीर्ति को घटाता है, हवा बादल की तरह स्वार्थ को छिन्न भिन्न करती है, तथा गर्मी प्यास की तरह जो आपत्ति को बढ़ाती है, और जिसने कृपा का लोप किया है उसमें वह क्रोध कैसे योग्य है । किसी तरह भी क्रोध धारण करना योग्य नहीं है ॥४८॥

## (११) मानत्याग प्रकरणम्

मन्दाक्रान्तावृत्त

यस्मादविर्भवति विततिर्दुस्तरापन्नदीनां,  
यस्मिन् शिष्टाभिरुचितगुणग्रामनामापि नास्ति ।  
यश्च व्याप्तं वहति वधधीधूम्यया क्रोधदावं,  
त मानाद्रि परिहर दुरारोहमौचित्यवृत्तेः ॥ ४९ ॥

अथ—जिससे दुस्तर दुःख से तरने योग्य आपत्ति रूपी नदिया का भुण्ड प्रकट होता है, जिसमें शिष्ट भले मनुष्या के मन पर द गुणा के समूह का नाम भी नहीं है और जो हिंसा बुद्धिरूपी धुआगार से युक्त काष्ठ रूपी दावाऽनल (वन की अग्नि) का धारण करता है। उस योग्य व्यवहार के लिये दुःख से भी न चढ़ने योग्य। मिथ्या अभिमानी पहाड़ को छोड़ दे ॥४६॥

शिखरिणीवृत्त

शमालान भञ्जन् विमलमतिनाडि विघटय—

किरन्दुर्वाक्पासूत्करमगणयन्नागमसृणिम् ।

अमन्नुर्व्या सर्वैर विनयनयवोधि विदलय—

जन क नानर्थं जनयति मदाधो द्विप इव ॥ ५० ॥

अथ—मिथ्याऽभिमान से अधा हुआ मनुष्य मदा-मत्त हाथा के जैसे शान्ति रूपी व-घन स्तम्भ को तोड़ता हुआ निमल बुद्धि रूपी रस्सी को तोड़ता हुआ दुष्ट वाणी रूपी धूल की ढुगली का उड़ाता हुआ, आगम सिद्धांत शास्त्र रूपी अकुश को नहीं धारता हुआ, पृथ्वी तल पर स्वतंत्रता पूर्वक घूमता हुआ, नम्रता और दया रूपी मार्ग को उजाड़ता हुआ, किस जुल्म को पदा नहीं करता है। अर्थात् सभी जुल्मों को पैदा करता है ॥५०॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

औचिन्याचरण विलुम्पति पयोवाह नभस्वानिव

प्रध्वस विनय नयत्यहिरिव प्राणस्पृशा जीवितम् ।



कीर्ति कैरविणीं मतजङ्ग इव प्रोत्लासयत्यञ्जसा  
मानो नीच इवोपकारनिकरं हन्ति त्रिवर्गं नृणाम् ॥५१॥

अर्थ—मिथ्याऽभिमान मनुष्यों के धर्म, अर्थ और काम को नष्ट कर देता है, (जैसे कि) नीच आदमी (अपने साथ किये गये) उपकारों के समूह को भूला देता है ।

मान—श्रेष्ठ व्यवहार को मिटा देता है (जैसे कि) वायु बादलों को मिटाती है ।

फिर मिथ्यामान क्या करता है ? बताते हैं ।

विनय—नम्र आचरण को नष्ट कर देता है (जैसे कि) सांप संपूर्ण जीव धारियों के जीवन को डश कर अपने जहर से नाश करता है ।

फिर क्या करता है ? सो भी कहते हैं ।

अर्थ—मनुष्यों के उज्ज्वल यश को एकदम मंला कर देता है (जैसे कि) हाथी कमल के पौधे को (उखाड़) कुम्हला देता है ॥ ५१ ॥

वसन्ततिलकावृत

मुष्णाति य. कृतसमस्तसमीहितार्थं,

संजीवनं विनयजोवितमङ्गभाजाम् ।

जात्यादिमानविषज विषमं विकारं,

तं भार्दवामृतरसेन नयस्व शान्तिम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो मिथ्याऽभिमान शरीर धारियों ने किया है उन्होंने संपूर्ण मनोऽर्थों को सिद्ध करने वाले और सजीवनी

बुद्धा न उम गुण करने वाले नमना मरी जीवन का नाश कर  
 दिया है। अतः हे धर्मिमात्री जानि कुल और गोत्र के मिथ्या  
 भावारी त्रिप ने पदा हाने वाले पत्यन उग्र विगाड को काम  
 सता रही धमृत से दान्न कर ॥ ५२ ॥

## १२-मायात्याग प्रकरणम्

मात्तिनीरुत

गुणवज्जनावध्यां सत्यसूयान्तिमन्ध्या,  
 गुणनिपुयतिमात्रां मोहमातन्नालानाम् ।  
 गमकमनहिमानीं दुर्यंगोराजधानी,  
 व्यसनगतनहायां दूग्ती मुञ्च मायाम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—गुणवता का उपा देने में लक्ष्यता (बलि प्रीति)  
 व समान, गुण तथा गुण का प्राप्त कर देने में मांयकान के  
 समान, गुणव गति रही तथा व पहिने माय ताता के समान,  
 समान तथा हाथी को हाथी के लिए गुण ताता के समान  
 मात्ति तथा समान का के लिए कर को यथा के समान व्यसन  
 (देह को) का राज्यकारी (समान ताता के गते माय तात्री)  
 के समान गुण गुणों गुण का मायता करने वाली तथा  
 ताता को है स्तिरज ॥ ५३ ॥

विधाय मायां विविधैरुपायैः, परस्य ये वञ्चनमाचरन्ति ।  
ते वञ्चयन्ति त्रिद्विपापवर्ग-सुखान्महामोहसखाः स्वमेव ॥५४॥

अर्थ—जो मनुष्य तरह-२ के उपायों से माया जाल को करके दूसरे को ठगते हैं बड़े भारी अज्ञान के साथी है तथा वे माया वाले मनुष्य जो स्वयं अपने आप को ही स्वर्ग और मोक्ष के सुख से दूर रखते हैं अर्थात् जो मनुष्य स्वार्थ के लिए माया जाल द्वारा दूसरो को ठगता है वह परवंचना के पाप से स्वर्ग और मोक्ष का अधिकारी नहीं बन सकता है अतः स्वयं ही अपने आप से ठगा जाता है ॥ ५४ ॥

इन्द्रवज्रावृत

मायामविश्वासविलासमन्दिरं,  
दुराशयो यः कुरुते घनाशया ।  
सोऽनर्थसार्थं न पतन्तमोक्षते,  
यथा विडालो लगुडं पयः पिवन् ॥ ५५ ॥

अर्थ—जो दुष्ट अतः करण वाला मनुष्य धन कमाने की इच्छा से अविश्वास की क्रीड़ा स्थली माया (कपट) को करता है वह मनुष्य अपने ऊपर गिरते हुए आपत्ति के समूह को नहीं देखता है । जैसे दूध को पीता हुआ बिलाड़ा लाठी को नहीं देख सकता । किसी बर्तन में रखे हुए दूध को नीचा मुँह करके जब बिल्ली

पान मगो है तो फिर पीछे से घाबर कोई लाठी मारे तो वह  
 लाठी उठा दींग रही पटनी तड़क् तई घा रमाने को दृष्टि  
 में ताता पण्डा का करवा ह परन्तु उता पण्ड क पाप से हाने  
 याव भवति विष तरु ते बधता का उम वक्त उने पता नहीं  
 पता है ॥ ४५ ॥

### पगन्ततिनारायण

मुग्धप्रहारणपरायणमुज्जिहोते,

त्रपाटत तपटलम्पटगित्तृते ।

जीर्णगुप्यत्रमवश्यमिहाप्यतृता

नापप्यभोजननियामममायती तत् ॥ ४६ ॥

अर्थ—एक पुरुष जिसको पण्ड में तितोई दृष्टि गिराएति है  
 या घणायो का टगा में गुप्ति नागुप प्रकट होता है । वह  
 पाण्डु इस जन्म में ना रिगाट क निपाप पूरा किये जाता  
 गती रह गकता है । जो कि रिगद प्रकृति बाया भाजत विप्य  
 क गान्धर्वि किन रिता म, पयता है ।

अर्थ—अप्य भोजन मात गानक गरीर म कृत्य श्रमाद  
 प्रकट र,ग र, ककता है पम ही पण्ड काता गुप्ति ताता प्रार  
 में दृष्टि का लता ५ पण म पण्ड रिगाट क, पाता  
 है ॥ ४६ ॥



## (१३) लोभ प्रकरणम्

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

यद्गुग्मिटीममन्ति विकटं क्रामन्ति देशान्तरं,

गाहन्ते गहनं समुद्रमतनुक्लेशां कृपि कुर्वन्ते ।

सेवन्ते कृपणं पति गजघटासंघट्टदुःसंचरं,

सर्पन्ति प्रधनं धनान्वितधियस्तल्लोभविस्फूर्जितम् ॥५७॥

अर्थ—धन के लोभ से अंधबुद्धि वाले लोग जिस कारण से अगम्य जगलों में भ्रमण करते हैं । भयंकर देश परदेश में घूमते हैं । ज्यादा दुखी वाली खेती को करते हैं । दुःसंचरम् हाथियों की घटा की भीड़ से नहीं जाने योग्य ऐसे कंजूस पति के पास जा के भी उसकी सेवा करते हैं तथा मृत्यु तक को आलिंगन करते हैं । वह सब लोभ का ही फल है ॥ ५७ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

मूलं मोहविषद्रुमस्य सुकृताम्भोराशिकुम्भोद्भवः,

क्रोधाग्नेररणिः प्रतापतरणिप्रच्छादने तोयदः ।

क्रीडासद्य कलेविवेकशशिनः स्वभानुरापन्नदो—

सिन्धुः कीर्तिलताकलापकलभो लोभः पराभूयताम् ॥५८॥

अर्थ—हे मनुष्यों ! अज्ञान रूपी विष वृक्ष की जो जड़ है पुण्यो के समुद्र के लिए अगस्त्य ऋषि के समान है । क्रोध रूपी अग्नि को पैदा करने के लिए अरणि ( एक जात का काष्ठ ) मंथन

के समान है । तेज स्वीय प्रथम दो ढक्की में जो बादल के  
 हैं । प्रापति कहत वा आटाख्य (पर) है । जान स्वीचद्र को  
 (द्वारा के लिए) जो रात के समान है । प्रापति स्वीचद्र को  
 को (एक जगह द्रव्यता करत के लिये जा) समुद्र के तुल्य है ।  
 तथा द्रव्यता स्वीचद्र को वा नाग करत में जो हाथी के बच्चे  
 के समान समान है । अता तात्र तवदा द्वाट दो ॥ ५८ ॥

यस्य तन्निश्चयः

नि गेयमर्थे दानि जृम्भमाणे,  
 तु गोपनस्मिन् विनयद्वयातिशये ।  
 चात्र गेयमात्रमागमदोष्यमाने,  
 गोभातिरित्युक्तं मनसि तु गोप ॥ ५९ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण द्रव्य रूप का जना में उद्यत हुए ।  
 तुल्य समुद्र रूप भवता के हर वात्र प्रत्यक्ष रूप गुणों को पचाने  
 वात्र रूप वात्र रूप द्रव्य को प्राप्ति के दर्शयमान होने वाले ।  
 गोपन स्मिन् अर्थ में गुणों का समुद्र निरूपण करने पर प्रत्यक्ष  
 का अर्थ है । अतः सामंती अर्थ में गुण समुद्र प्रत्यक्ष  
 अर्थ है । अतः ? ॥ ५९ ॥

गोपनस्मिन् विनयः

आत्र कस्तूर पुर गुणों के प्रदिष्टा शून्य,  
 विनयमात्रा यत्र कस्तूरप्राप्तिरिति विनयिम् ।

विश्वं वश्यमवश्यमेव मुलभाः स्वर्गापवर्गश्रियः,

ये संतोषमणोपदोपदहनध्वंसाम्बुदं विभ्रते ॥ ६० ॥

अर्थ—जो मनुष्य संपूर्ण दोष अग्नि को बुझाने में वादलो के समान संतोष को धारण करते हैं। उन मनुष्यों के मुख के सामने ही (मानो) कल्प वृक्ष पैदा हुआ है। घर में काम वेनु ही (मानो) घुस पड़ी है। चिन्तामणि नाम का रत्न हथेली में आया हुआ ही उसे उपलब्ध है। देवताओं का घन भंडार भी समीप में (आ गया है) सारा ससार उसके आधीन है तथा स्वर्ग और मोक्ष की लक्ष्मी निश्चय करके उसे मुप्राप्य है ॥ ६० ॥

---

### (१४) सौजन्य प्रकरणम्

शिखरीणीवृत्त

वर क्षिप्तः पाणिः कुपितफणिनो वक्त्रकुहरे,

वर भम्पापातो ज्वलदनलकुण्डे विरचितः ।

वरं प्रासप्रान्तः सपदि जठरान्तर्विनिहितो,

न जन्यं दीर्जन्यं तदपि विपदां सद्य विदुषा ॥ ६१ ॥

अर्थ—क्रोधित हुए साँप के मुख रूपी विल में हाथ डालना अच्छा है। जलते हुए आग के कुण्ड में कूद पड़ना अच्छा है। भाले की अणी एकदम पेट में घुसेड़नी अच्छी है। फिर भी

बुद्धिमान पुरुष को अनेक आपत्तिया का घर ऐसी दुष्टता नहीं  
करनी चाहिए ॥ ६१ ॥

वसततिलकावृत

मीजन्तमेव विदधाति यशश्च य च,  
स्वश्रेयस च विभव च भवक्षय च ।  
दीर्जन्यमावहसि यत्कुमते तदर्थं,  
धान्येऽनल क्षिपसि तज्जलसेकमाध्वे ॥ ६२ ॥

अथ—कीर्ति समूह का श्रीर आत्म कल्याण को धन संपत्ति  
को श्रीर ससार बधन के नाश को तो किसी के साथ भलमसी  
या व्यवहार भी कर देता है । फिर । हे कुमते । अरे ! दुष्ट  
बुद्धियाले तू उपरोक्त वस्तुओं के लिए जो दुष्टता को धारण  
करता है । वह तो मानो पानी पिलाकर बढाने योग्य धान्य के  
खेत में आग को फैलता है ॥ ६२ ॥

पृथ्ग्वृत्त

वर विभववध्यता मुजनभावभाजा नृणा—  
मसाधुचरिताजिता न पुनरुजिता सपद ।  
ऊरात्वमपि शोभते महजभायती सुन्दर,  
विपाकविरमा न तु श्वयधुसभवा स्थलता ॥ ६३ ॥

अथ—सज्जनता का सेवन करने वाले पुरुषों को धन रहित  
होना अच्छा लगता है । परन्तु दुरे आचरण से ध्वष्टों की दृष्टि



ऐसी कमाई हुई बड़ी बड़ी सम्पत्तियाँ भी अच्छी नहीं लगती हैं। भविष्यकाल में सुन्दर २ होने वाली ऐसी स्वाभाविक दुबलता भी शोभती है किन्तु भविष्य में बुरा फल देने वाली सृजन से पैदा हुई शरीर की मोटाई नहीं शोभती है ॥ ६३ ॥

### शाद्वलविक्रीडितवृत्त

न ब्रूते परदूषणं परगुणं वक्त्यल्पमप्यन्वहं,  
संतोषं वहते परद्विषु परावाधासु घत्ते शुचम् ।  
स्वश्लाघां न करोति नोज्झति नयं नीचित्यमुल्लङ्घय-  
त्युक्तोऽप्यप्रियमक्षमां न रचयत्येतच्चरित्र सताम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—जो दूसरे पुरुषों की एवों को नहीं कहता है किन्तु थोड़ा भी हो दूसरे पुरुषों के गुणों को ही हमेशा कहता है। पराये की सपत्ति पर संतोष को धारण करता है तथा पराये दुःखों में सोच करता है। आत्म प्रशंसा को नहीं करता है। न्याय मार्ग को नहीं छोड़ता है। लायकी का उल्लंघन नहीं करता है। बुरा वचन कह देने पर भी क्रोध को नहीं करता है। सत्पुरुषों का यही चरित्र है ॥ ६४ ॥

## (१५) गुणिसङ्ग प्रकरणम्

शादू लविक्रीडितवत

धर्मं ध्वस्तदयो यशश्च्युतनयो वित्तं प्रमत्तं पुमा-  
न्काव्यं निष्प्रतिभस्तपः शमदमैः शून्योऽल्पमेधा श्रुतम् ।  
वस्त्वालोकमलोचनश्चलमना ध्यानं च बाञ्छत्यसौ,  
यः सङ्गं गुणिनाविमुच्य विमतिं कल्याणमाकाङ्क्षति ॥ ६५ ॥

अर्थ—जो पुरुष बुद्धि रहित होकर गुणवानो की सोपत को छोड़ आत्म कल्याण को चाहता है । वहाँ मानो निदयी वन धर्म को नितिभ्रष्ट हो इज्जत को आलसी वन धन को, निर्बुद्धि हो, साहित्य प्राप्तो को शम दम से रहित हो तपस्या को अल्प ज्ञानवाला वन शास्त्र को अधा हो वस्तुओं के देखने को चंचल चित वन समाधि को चाहता है ॥ ६५ ॥

हरिणीवृत्त

हरति कुमतिं भिन्ते मोहं करोति विवेकिताम्  
वितरितं रतिं सूते नीतिं ननोति विनोतताम् ।  
प्रथयति यशो घत्ते धर्मं व्यापोहति दुर्गतिं  
जनयति नृणां किं नाभीष्टं गुणोत्तमसङ्गम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—गुण प्राप्ति के लिये उत्तम पुरुषात्मी सगति मनुष्यों के किस मनोरथ को पूर्ण नहीं करती है याने सबही मनोरथों को पूर्ण करती है क्योंकि वह पराव बुद्धि को नष्ट करती है ।

अज्ञान को दूर करती है । ज्ञान को पैदा करती है । प्रेम को प्रदान करती है । न्याय को उपजाती है । नम्रता को फैलाती है । इज्जत को बढ़ाती है । धर्म को पुष्ट करती और खराब गति को हटाती है ॥ ६६ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

लब्धुं बुद्धिकलापमापदमपाकर्त्तुं विहर्तुं पथि,  
प्राप्तुं कीर्तिमसाधुतां विधुवितुं धर्मं समासेवितुम् ।  
रोधुं पापविपाकमाकलयितुं स्वर्गपिवर्गश्रियं,  
चेत्त्वं चित्तं समीहसे गुणवतांसंज्ञं तदङ्गीकुरु ॥ ६७ ॥

अर्थ—रे मन यदि तू बुद्धि वैभव को पाना चाहता है, आपत्ति को दूर करना चाहता है, सन्मार्ग में विहार करना चाहता है, यश को पाने की इच्छा है, दुष्टता को दूर छोड़ने चाहता है, धर्म को सेवन करना चाहता है, पापों के परिणाम को रोकना चाहता है तथा स्वर्ग और मोक्ष की शोभा का अनुभव करना चाहता है । तो गुणवान् पुरुषों की सौवत को स्वीकार कर ॥ ६७ ॥

हरिणीवृत्त

हिमति महिमाम्भोजे चण्डानिलत्युदयाम्बुदे  
द्विरदति दयारामे क्षेमक्षमाभृति वज्रति ।  
समिधति कुमत्यग्नौ कन्दत्यनोतिलतासु यः  
किमभिलपतां श्रेयः श्रेयान् स निर्गुणिसङ्गमः ॥ ६८ ॥

अथ—जो त्रिगुणी पुण्या वा सगम महिमान्प नमल के  
 लिए अफ का आचरण करता है, उन्नतिरूप वादला के लिए  
 अद्वय यातु का आचरण करता है, दयारूप अगावे के लिए  
 दया का आचरण करता है, कल्याण पहाड के लिए अज्य का  
 आचरण करता है, दुर्मतिरूप आग के लिये दधन का आचरण  
 करता है । तथा अयापन्य वेतो के लिए अ- या आचरण  
 करता है । यह त्रिगुण्या वा सगम पुण्या वा कल्याण चाहते  
 पारों व पान्त क्या कल्याणकारी है ? नहीं बदापि कल्याण  
 का । गही है ॥ ६८ ॥

### (१६) द्वित्रिवदमन प्रकरणम्

शार्दूलमणि-शब्दितरत

मात्मान गुणधेय तिमिमयिषु य मूकताधायते  
 कृत्याहृत्यमिषेयजोवित्तुतो य गच्छमर्षायते ।

य पुन्यदुग्मगण्डविषो स्फूर्जन्तुतागयते

य पुन्यत्रमुद्रमिद्वयगग द्वित्वा पुनपुनय ॥ ६९ ॥

अथ—जो द्वित्रिणी वा मद्रूप आगत वा मरत पाग म  
 से आ । जो अरमान् पाड व ममा आचरण करता है, तथा  
 जो व । य अरमान् के आगत वा शीत का हृमन करता म जाने  
 व । जो अरमान् करता है । य । जो व । व दृष्ट करता म

तेज कुल्हाड़े का आचरण करता है । तथा जिसने उस व्रत की मुद्रा को नष्ट की है ऐसे बलवान् इंद्रिय समूह को अपने काबू में कर कल्याण युक्त हो जा ॥६६॥

शिस्रिणीवृत्त

प्रतिष्ठां यन्निष्ठां नयति नयनिष्ठां विवटय-

त्यकृत्येष्वाधते मतिमतपसि प्रेम तनुते ।

विवेकस्योत्सेकं विदलयति दत्ते च विपदं,

पदं तद्दोषाणां करणनिकुरम्बं कुरु वशे ॥ ७० ॥

अर्थ—जो इंद्रिय समूह मनुष्य को इज्जत को नष्ट करता है, नीति के ध्यान को विच्छिन्न करता है, खराब कामों में बुद्धि को लगाता है, तपस्या के भाव में अर्थात् नहीं तपस्या करने में प्रेम प्रेम को फैलाता है, ज्ञान के उदय को रोकता है और आपत्ति को प्रदान करता है । ऐसे उस अनेक दोषों के स्थान इंद्रिय समूह को अपने वश में कर ॥ ७० ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्त.

घत्तां मौनमगारज्जतु विधिप्रागल्भ्यमभ्यस्यता-

मस्त्वन्तर्गणमागमश्रममुपादत्तां तपस्तप्यताम् ।

श्रेयःपुञ्जनिकुञ्जभञ्जनमहावातं न चेदिन्द्रिय-

व्रातं जेतुमवैति भस्मनिहुतं जानीत सर्वं ततः ॥ ७१ ॥

अर्थ—हे मनुष्य चाहें तू मौन व्रत को धारण करो घर को छोड़ दो । धर्म विधी की प्रगल्भता को सीखो । अन्दर घास करो

शास्त्राभ्यास को अवण करो । तपस्या को तपो परन्तु कल्याण के समूह रूप निबुझ को नष्ट करने में छाँधी के समान इस इन्द्रिय समूह को जीतने को नहीं जानता है तो पूर्वोक्त इन सब बातों का राख में होमे हुए के समान ही निष्फल जानो ॥ ७१ ॥

दादू गविसीडितवृत्त

घमध्वसधुरोणमभ्रमरसावारोणमापत्प्रथा—

लङ्घनींणमशर्मनिमित्तकलापारीणमेकान्तत ।

सर्वान्निमनात्मन्निमनयात्यन्तोन्मिष्टे यथा—

कामीन् कुपयाध्वनीन्मजयन्नक्षीधमक्षेमभाक् ॥ ७२ ॥

अर्थ—घम का नाश करने में मुष्टि सत्य ज्ञान को ठकने वाले, आपत्ति को फलाने वाले, अवल्याण को करने वाली कला में पारगर्त एकांततया सबस्व यमाने वाले आत्मा का अवल्याण करने वाले अगति का पग लेने वाले अपनी इच्छा से करने जाने कुमाग पर चलने वाले ऐसे इन्द्रिय समूह को यदि नहीं जीता है तो वह अपना भला करने वाला नहीं है अर्थात्त बुरा करने वाला है ॥ ७२ ॥

(१७) लक्ष्मीस्वभाव प्रकरणम्

शार्दूलविक्रीडितकृत

निम्नं गच्छति निम्नगेव नितरां निद्रेव विष्कंभते,

चैतन्यं मदिरेव पुष्यति मदं धूम्येव धत्तेन्वताम् ।

चापल्यं चपलेव चुम्बति दवज्वालेव तृष्णां नय-

त्युल्लासं कुलटाङ्गनेव कमला स्वैरं परिभ्राम्यति ॥ ७३ ॥

अर्थ—लक्ष्मी नदी की तरह नीच पुरुष को ही प्राप्त होती है तथा निरतर नदी की तरह समग्र ज्ञान आगमन की सूचना के लिए आगल का आचरण करती है, शराव के जैसे अभिमान को पुष्ट करती है, धुमाँ के समूह की तरह मनुष्य को अंधा करती है, विजली की तरह चंचलता को पास रखती है, वन अग्नि के समान घनादिक की प्यास को पैदा करती है एवं, खराब स्त्री की तरह खुशी पूर्वक स्वतंत्र भटकती है । ॥ ७३ ॥

शार्दूलविक्रीडितकृत

दायादाः स्पृहयन्ति तस्करगणा मुष्णन्ति भूमोभुजो

गृह्णन्तिच्छन्माकलय्य हुतभुग्भभस्मीकरोति क्षणात् ।

अम्भः प्लावयते क्षितौ विनिहितं यक्षा हरन्ते हठाद्

दुर्वृत्तास्तनया नयन्ति निधनं धिग्वह्वधीनं धनम् ॥ ७४ ॥

अर्थ—जिस धन की कुटुम्ब वाले इच्छा करते हैं, चोर चुरा कर ले जाते हैं राजा लोग कपट कर के हर लेते हैं, अग्नि क्षण पी खरहरगच्छीय ज्ञान मन्दिर, जयपुर

भर मे जला देती है । पानी बहा के ले जाता है । पृथ्वी मे रखता हुआ यज्ञ लाग चलूवक हर लेते हैं । दुष्ट बेटे नष्ट कर देते हैं । इस प्रकार के इस बहुत जनो के आधीन हुए धा को धिक्कार है । ॥ ७४ ॥

शादू लविक्रीडितवृत

नीचस्यापि चिर चहूनि रचयन्त्यायान्ति नीचैर्नोति,  
शत्रोरप्यगुणात्मनोऽपि विदधत्युच्चं गुणोत्कीर्तनम् ।  
निर्वेद न विदन्ति किञ्चिदकृतज्ञस्यापि सेवाक्रमे,

कष्ट किं न मनस्विनोऽपि मनुजा कुर्वन्ति वित्तार्थिन ॥७५॥

अथ—घन चाहने वाले बुद्धिमान मनुष्य भी क्या २ कष्ट नहीं उठाते हैं अथवा सभी कष्ट उठाते है । जैसे कि नीच पुरुष के आगे भी चिरकाल तक मिथ्या स्तुति वाक्यो को बनाते है । नीचे झुक करके प्रणाम करते हैं । शत्रु हो तो भी तथा दुगुणी हो तो भी उसके गुणो की प्रशंसा जोर से करत हैं तथा किये हुए उपकार को भूल जाने वाले का भी सेवा करने मे कुछ भी दुःख को नहीं जानते हैं ॥ ७५ ॥

शादू लविक्रीडितवृत

लक्ष्मी सपति नीचमर्णवपय सङ्गादिवाग्भोजिनी—

मसर्गादिव कण्टकाकुलपदा न क्वापि घते पदम् ।



चैतन्यं विपन्ननिवेरिव नृणामुज्जासयत्यथ वा

धर्मस्थाननियोजनेन गुणिभिर्ग्रीह्यं तदस्याः फलम् ॥७६॥

अर्थ—समुद्र के पानी की संगति से ही मानो धन संपत्ति नीच २ के पास सरकती है। तथा कमलिनी की सौबत से ही मानो कांटो से आक्रान्त पैरो वाली होकर कहीं पर भी पैर को नहीं रोकती है। जहर के ससर्ग से जैसे मनुष्यों के ज्ञान को भ्रष्ट नष्ट कर देती है। इस कारण से गुणवाले पुरुषों को धर्म-कार्यों में लगाकर इस लक्ष्मी का लाभ ग्रहण कर लेना चाहिए।

### १८—दान प्रकरणम्

षादूर्लविक्रीडितवृत्त

चारित्रं चिनुते तनोति विनयं ज्ञानं नयत्युन्नतिं.

पुष्पाति प्रगभ तपः प्रबलयत्युल्लासयत्यागमम् ।

पुण्यं कन्दलयत्यघं दलयति स्वर्गं ददाति क्रमा—

न्निर्वाणश्चियमातनोति निहितं पात्रे पवित्रं धनम् ॥७७॥

अर्थ—(सुपात्र) सत्पात्र में दिया हुआ अथवा सौपा हुआ उत्तम धन चारित्र को इकट्ठा करता है याने उत्तम बनाता है। नम्रता को बढ़ाता है। बुद्धि को उदय मार्ग पर ले जाता है। शांति को परिपुष्ट करता है। तपस्या को बलवान करता है।

शास्त्र नान को विकसत करता है घम को अकुरित करता है  
पाप का विनाश करता है । स्वर्ग को प्रदान करता है । मोक्ष  
की लक्ष्मी को मिला देता है ॥ ५७ ॥

शाङ्ग लविक्रीडितवृत्त

दारिद्र्यं न तमीक्षते न भजते दौगत्यमालम्बते,  
नाकीर्तिं पराभवोऽभिलषते न व्याधिरास्कन्दति ।  
दैव्यं नाद्रियते दुनोति न दग्धं लिङ्गन्ति नैवापद  
पात्रे यो वितरत्यनथदलनं दानं निदानं श्रियाम् ॥५८॥

अर्थ—जो मनुष्य लक्ष्मीप्राप्ति के मुख्य कारण एव श्रमाय  
को मिटाने वाले दान को सुपात्र में प्रदान करता है । उस मनुष्य  
को गरीबी देस भी नहीं सकती है । खराब हालत उसकी हो  
नहीं सकती है । अपयश उसका आसरा ने नहीं सकता है ।  
पराजय उसको चाहती नहीं हैं । बीमारी उसे थका नहीं सकता  
है । दुबलता उसका सग नहीं करती है । भय उसे दुःखी नहीं कर  
सकता और आपत्तिएँ सता नहीं सकती है । ॥ ५८ ॥

शाङ्ग लविक्रीडितवृत्त

लक्ष्मीं कामयते मतिर्मृगयते कीर्तिस्तमालोक्ते,  
प्रीतिश्चुम्बति सेवते सुभगता नो रोगता विद्मति ।  
श्रेयं सहतिरभ्युपैति वृणुते स्वर्गोपभोगस्यति—  
मुंक्तिर्वाञ्छति यः प्रयच्छति पुमान् पुण्यार्थं मयं निजम् ॥५९॥

अर्थ—जो पुरुष पुण्य कमाने के लिए अपने धन को दान देता है उस पुरुष की सम्पत्ति (लक्ष्मी) चाहती है। ज न उसको खोजना है। यश उसकी तरफ देखता है। प्रेम उसका चुम्बन करता है। सौभाग्य उसको सेवता है। तन्दुहस्ती उसका आलिंगन करती है। कल्याण समूह उसके पास आता है। स्वर्ग के भोगों की स्थिति उसे वर लेती है। तथा मोक्ष उसकी वाञ्छना करता है। ॥ ७६ ॥

मन्दाक्रान्तावृत्त

तस्यासन्ना रतिरनुचरी कीर्तिरुत्कण्ठिता श्रीः,  
स्निग्धा बुद्धिः परिचयपरा चक्रवर्तित्वऋद्धिः ।  
पाणौ प्राप्ता त्रिदिवकमला कामुको मुक्तिसंप-  
त्सप्तक्षेत्र्यां वपति विपुलं वित्तवोजं निजं यः ॥ ८० ॥

अर्थ—जो पुरुष सातो क्षेत्रों में अपने प्रचुर धनरूप वीज को बोता है। उसके सतोष या प्रीति आठों पहर पास रहती है। प्रशंसा उसकी दासी होकर रहती है। लक्ष्मी उसके लिये लालायित होती है। ज्ञान विशुद्ध हो जाता है। साम्राज्य संपत्ति उस पुरुष से परिचय बढ़ाने लग जाती है। स्वर्गीय समृद्धि उसके करतल गत होती है। एवं मोक्षलक्ष्मी भी उस पुरुष से उपभोग करने की इच्छा वाली हो जाती है ॥ ८० ॥

## १६-तपप्रकरणम्

शाद्रूलविश्रीडितवृत्त

यत्पूर्वाजितकर्मशैलकुलिश यत्कामदावानल-

ज्वालाजालजल यदुग्रकरणग्रामाहिमन्त्राक्षरम् ।

यत्प्रत्यूहतम समूहदिवस यत्लब्धिलक्ष्मोलता-

मूल तद्विविध यथाविधि तप कुर्वीत वीतस्पृह ॥८१॥

अर्थ—जो पूव भव मे सचित किये गये कमरूपी पहाड के लिए वज्र के समान है । जो कामरूपी दावाग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं व शमनाथ जलके समान है । जो अति भयकर इन्द्रिय समूहरूपी साप के उत्कीर्णन के लिए मन्त्राक्षर के समान है । जो विघ्नरूपी गाढाऽघकार के लिए दिन के समान है तथा जो लब्धी रूपी लक्ष्मी लता को जड के समान है । उस तरह के तपस्या का यथाविधि नि स्पृह होकर करें ॥ ८१ ॥

शाद्रूलविश्रीडितवृत्त

यस्माद्विघ्नपरम्परा विघटते दाम्भ्य सुग कुवते

तामः दाम्भ्यति दाम्भ्यतोद्विगण कल्याणमुत्सर्पति ।

उमीनति महर्द्धय वलयति ध्वस च य कर्मणा,

स्याधोन त्रिदिव शिव च भवति द्वादध्य तपस्तप्त विम् ॥८२॥

अर्थ—जिगने विघ्ना का समूह नाश होता है, देवता भीरवी बनते हैं महाज्वर का नाश होता है इन्द्रिया के समूह

का दमन होता है, कल्याण फैलता है, बड़ी २ सम्पत्तियें विकसित होती है, तथा जो कर्मों का नाश करता है और जिससे स्वर्ग और मोक्ष स्वायत्त (स्वाधीन) होता है। वह तप क्या प्रशंसनीय नहीं है। अपितु वह तप जरूर प्रशंसनीय है। ८२।

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

कान्तारं न यथेपरो ज्वलयितुं दषौ दवाग्निं विना,  
दावाग्निं न यथापरः शमयितुं शक्तो विनाम्भोधरम् ।  
निष्णातः पवनं विना निरसितुं नान्यो यथाम्भोधरम्,  
कर्मोघं तपसा विना किमपरो हन्तुं समर्थस्तथा । ८३।

अर्थ—जिस तरह जंगल को जलाने में दावानल के सिवाय दूसरा समर्थ नहीं है। जिस तरह दावानल को बुझाने में बादलों के सिवाय दूसरा समर्थ नहीं है। जिस तरह बादलों को अलग करने में वायु के सिवाय दूसरा चतुर नहीं है। वैसे ही कर्मों के समूह को तपस्या के सिवाय दूसरा कोई नाश करने को क्या समर्थ है ? अथवा कोई नहीं। कर्म नाश तपस्या से होता है। ८३।

स्वग्धरावृत्तः.

संतोषः स्थूलमूलः प्रशमपरिकरस्कन्धबन्धप्रपञ्चः,  
पञ्चाक्षीरोधशाखः स्फुरदभयदलः शीलसंपत्प्रवालः ।  
श्रद्धाम्भः पूरसेकाद्विपुलकुलबलैश्वर्यसौन्दर्यभोग—  
स्वर्गादिप्राप्तियुष्पः शिवपदफलदः स्यात्तपः कल्पवृक्षः। ८४।

अथ—तपस्वरूप जो कल्पवृक्ष है, उसके सतोप तो प्रधान जड़ हैं। शांति के उपकरण है। वे गोड (तना) शाखा आदि का विस्तार है। पांच इंद्रियो का रोध रोकना है वही छोटी मोटी डालिएँ हैं। खिलता हुआ जो अभयदान देना है, वही पत्र समूह है, शील को जो संपत्ति है, वही नवीन पत्तों का उद्गम है। श्रद्धा रूप जो अभय पूर पानी का प्रवाह उसके सोचने से ऊँचा घराना प्राप्त होता है। बल प्राप्त होता है। एश्वय मिलता है। सौंदर्य पाना, सासारिक विषय सुखा का भोगना तथा स्वर्गादि को प्राप्ति करना आदि जिसके पुष्प हैं एवं मोक्षरूपी मप्राप्य उत्तम फलों को देने वाला है। ॥ ८४ ॥

## २०-भावनाप्रकरणम्

शादू लविक्रीडितवत्

नोराने तरुणीकटाक्षितमिव त्यागव्यपेतप्रभो ।

सेवाकष्टमिवोपरोपणमिवाम्भोजन्मनामश्मनि ।

विश्वम्बर्षमिव परक्षितितले, दानाहवर्चातप —

स्वाध्यायाध्ययनादि निष्फलमनुष्ठान विना भावनाम्। ८५।

अथ—रागरहित पुरुष पर किये गये युवती स्त्री के कटाक्ष की तरह देने में कठोर कृपणमालिक की की गई नौकरी के समान पत्थर पर कमल के पौधा के उगाने के जैसे दजड़ जमीन पर

चारो तरफ हुई वर्षा की तरह दान देना, जिनेन्द्र भगवान की पूजा करना, तपस्या करना, शात्रों का विचारना और पढ़ना आदि क्रियायें सब श्रद्धा भक्ति के बिना फिज़ूल है ॥ ८५ ॥

जैसे पानी पर उगने वाले कमलो को यदि पत्थर पर उगाया जाय़ ता कमल तो उगने दूर रहे उल्टा परिश्रम भी व्यर्थ जाता है । तथा जैसे खारी जमीन पर कोई घास आदि तो उगता नहीं और उस पर यदि बरसा होवे तो व्यर्थ ही जाती है । वैसे ही यदि जिस पुरुष के दिल में श्रद्धा भक्ति न हो तो फिर उसका दिखावे मात्र के लिए दान देना, पूजा पढ़ाना, तपस्या करना आदि सत्कार्य भी व्यर्थ ही हैं । अर्थात् यथार्थ फलदायी नहीं होते ॥ ८६ ॥

सारांश—जिस प्रकार जितेन्द्रिय पुरुष के पास जाके स्त्री विषय याचना करे तो उल्टा उसे ही शमिदा होना पड़ता है, जैसे जो स्वामी अपने नौकरो को पूरी तनखाह न दे और उमकी जो कोई नौकरी करे तो नौकरो को खाली दुःख ही होता है ।

शार्दूलविक्रीडितवृत्

सर्वं ज्ञोप्सति पुण्यमोप्सति दयां धित्सत्यघं भित्सति,  
क्रोधं दित्सति दानशीलतपसां साफल्यमादित्सति ।  
कल्याणोपचयं चिकीर्षति भवाम्भोधेस्तटं लिप्सति,  
मुक्तिस्त्रीपरिरिप्सते यदि जनस्तद् भावयेद् भावनाम् ॥ ८६ ॥

अथ—अगर मनुष्य सब विषयों को जानना चाहता है, धर्म को इच्छता है, दया को धारण करना चाहता है पाप को दूर करना चाहता है गुस्से को दूर करना चाहता है दान शील और तपस्या की सफलता को पाना चाहता है कल्याण की वृद्धि को करना चाहता है, भवसागर के पेलो तीर को जाने को चाहता करता है। तथा मुक्ति प्राप्ति रूप मन्त्रों को आलिंगन करना चाहता है तो श्रद्धाभक्ति को अपने ह्र्दय में भावित करे ॥ ८६ ॥

### पृथ्वीवृत्त

विवेकवनसारिणी प्रशमशसजीवनी,

भवाणवमहातरी मदनदावमेघावलीम् ।

चलाक्षमृगवागुरा गुरुपायशैलाशनि,

विमुक्तिपथवेसरी भजत भावना किं परै ? ॥८७॥

अथ—विवेक रूपी वन में श्रुतिवेग से बहने वाली नदी के समान शांति और सुख को पदा करने वाली ससार रूपी समुद्र को पार लगाने वाली बड़ी जहाज के समान, कामरूपी दावाञ्जल को बुझाने में मेघ घटा के समान, चंचल इन्द्रिय रूपी हरिणी को रोकने लिए वागुरा के समान, उड़े २ कपायरूपी पहाड़ों के लिए



वज्र के समान, मोक्ष मार्ग में ले जाने के लिए घोड़े के समान, श्रद्धाभक्ति को ही अपने दिल में धारण करो । अन्याय साधनों में क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कुछ नहीं भावना ही सबसे बढकर है ॥ ८७ ॥

### शिखरीणीवृत्त

घनं दत्तां वित्तां जिनवचनमभ्यस्तमखिलं,  
क्रियाकाण्डं चण्डं रचितभवनी सुप्तमसकृत् ।  
तपस्तोत्रं तप्तं चरणमपि जीर्णं चिरतर,  
न चेच्चित्ते भावस्तुपवपनवत्सर्वमफलम् ॥ ८८ ॥

अर्थ—यद्यपि मनुष्य ने जन्म में ज्यादा धन का दान दे दिया, सम्पूर्ण जैन शास्त्रों को पढ लिया इस अतिउग्र धर्म क्रिया को संपादन किया । चिरकाल तक जमीन पर शयन किया कठिन तपस्या तपी, बहुत समय तक चारित्र्य का पालन किया परन्तु हृदय में भावना नहीं है तो उपयुक्त ये सारी बातें खेत में फूस उगाने के समान फिजू है । जिस तरह खेत में खूब हल जोते, अच्छा खाद भी डाला पर बीज को जगह तुप ( धान का छिलका मात्र ) लगा दे तो उगता नहीं और केवल जोताईव बोवाई में तकलीफ पड़ती है । इसी तरह भावना बिना ये सारी बातें फिजूल हैं ॥ ८८ ॥

## २१-वैराग्यप्रकरणम्

हरिणीवृत्त

यदशुभरज पाथो दृष्टेद्विरदाङ्कुश,  
कुशलकुसुमोद्यान माद्यन्मन करिश्चुङ्खला ।  
विरतिमणोलालवेश्म स्मरज्वरभेषज,  
शिवपथरथस्तद् वैराग्य विमृश्य भवाभय ॥८६॥

अर्थ—जो अ मागलिक धूल को धोने के लिए जल के समान है, बलवान होने से स्वतन्त्र हुई इन्द्रियो के समूह रूप हाथी को वश करने में अकुश के समान है, बल्याण रूप पुष्पो का वगीचा है, उ मत हाथी को बाँधने के लिए साकल के समान है, विरतिरूप सुन्दरी का मानो शीड़ा घर है, कामज्वर का अमाघ श्रौषध है तथा मोक्षमाग में ले जाने के लिए रथ के समान है । उस वैराग्य को हे भाविकजन ! तू धारण कर (विचार कर) निभय होजा ॥ ८६ ॥

वसन्ततिलकावृत्त

चण्डानिल स्फुरतमब्दचय दराचि—  
वृक्षत्रज तिमिरमण्डलमकंविम्बम् ।  
वज्र महोघ्रनिवह नयते यथान्त,  
वैराग्यमेकमपि कम तथा समग्रम् ॥८७॥

अर्थ—जैसे भयंकर हवा आकाश मण्डल में विचलित हो  
 बादलों को धटा को बिखेर देती है, जगल को अग्नि वृक्षों के  
 समूह को जला देती है, आँधो का भयंकर गोट मूयबिंब को  
 छिपा देता है, वज्र पर्वतकुल को तोड़ देता है । वैसे ही एक भी  
 विरक्तिपण (वैराग्यपणा) संपूर्ण कर्मजाल को विनष्ट कर  
 देता है ॥ ६० ॥

### गिखरिणीवृत्त

नमस्या देवानां चरणवरिवस्या शुभगुरो—

स्तपस्या नि.सीमक्लमपठ मुपास्या गुणवताम् ।

निपद्यारण्ये स्यात्करणोदमविद्या च शिवदा,

विरागः क्रूरागः क्षपणनिपुणोन्तः स्फुरति चेत् ॥ ६१ ॥

अर्थ—यदि भयंकर अपराधो को मिटाने वाला वैराग्य अन्तः  
 करण में विराजमान है, तो देवताओं को किया हुआ नमस्कार,  
 अच्छे गुरु के पैरों की सेवा, अपार दुखों वाली तपस्या, गुण-  
 वानों की संगति, वन में बैठना, तथा इन्द्रियों का निग्रह, ये सब  
 मोक्ष देने वाले होते हैं ॥ ६१ ॥

### गार्हूलविक्रीडितवृत्त

भोगान् कृष्णभुजङ्गभोगविषमान् राज्यं रजःसन्निभं,

वन्धून् वन्धनिवन्धनानि विषयग्रामं विषान्नोपमम् ।

भूति भूतिसहोदरा तृणतुलं स्मरणं वादत्वा त्यज-  
स्तेष्वासक्तिमनाविलो विलभते मुक्तिं विरक्त पुमान्॥६२॥

अथ—इन्द्रियो के सुखो को श्याम सर्प के समान भयकर  
जानकर, राजलक्ष्मी को रेत के तुल्य जानकर, कुटुम्बियों को  
वधन के कारण जानकर, इन्द्रिय समूह को जहरीले शस्त्र के  
समान जानकर, ऐश्वर्य को राख के सदृश जानकर, स्त्री समूह  
को तिनके के समान जानकर, उक्त विषयों के प्रेम को छोड़ता  
हुमा, निष्पाप और विरक्त चित्तवाला पुरुष मोक्ष को प्राप्त  
होता है ॥ ६२ ॥

अथ मनुष्य जन्म रूपं वृक्षं के फल

उपजातिवृत्तं

जिनेन्द्रपूजा गुरुपर्युपास्ति सत्त्वानुकम्पा शुभपात्रदानम् ।

गुणानुराग श्रुतिरागमस्य नृजन्मवृक्षस्य फलान्यमूनि ॥६३॥

अर्थ—जिनेन्द्र 'भगवान्' की पूजा, गुरुवरणों की सेवा,  
प्राणिमात्र पर दया, सत्पात्र को दान देना, सद्गुणों पर प्रेम

रखना, तथा शास्त्रों पर श्रद्धा रखना । ऊपर की ये बातें इम  
मनुष्य जन्मरूपी वृक्ष के फल हैं ॥ ६३ ॥

## सामान्य उपदेश

शिखरिणीवृत्त.

त्रिसन्ध्यं देवार्चा विरचय चयं प्रापय यशः,  
श्रियः पात्रे वापं, जनय नयमार्गं नव मनः ।  
स्मरक्रोधाद्यारीन् दलय कलय प्राणिषु दयां,  
जिनोक्तं सिद्धान्तं शृणु वृणु जवान्मुक्तिकमलाम् ॥६४॥

अर्थ—है भविकजन प्रातः मध्याह्न, और सायं तीनो काल  
में भगवान की पूजा को कर, यश को प्राप्त कर, सुपात्र में लक्ष्मी  
का स्पर्ध कर, चित्त को न्याय के मार्ग पर लेजा, काम क्रोध  
आदि शत्रुओं का नाश कर तथा जीवों पर दया कर, सर्वज्ञ  
जिनेश्वर भगवान के कहे हुए सिद्धान्तों को सुन एवं जल्दी से  
मोक्षलक्ष्मी को वरो ॥ ६४ ॥

कृत्वा हर्तृपदपूजनं यतिजनं नत्वा विदित्वागमं,  
 हित्वा मङ्गलमघर्मकमठधिया, पात्रेषु दत्त्वा धनम् ।  
 गत्वा पद्धतिमुत्तमक्रमजुषा जित्वान्तरारिव्रजं,  
 स्मृत्वा पञ्चनमस्क्रिया कुरु करकोडस्थमिष्टं सुखं ॥ ६५ ॥

अथ—जिनेन्द्र भगवान की चरण सेवा को करके, साधु  
 समुदाय को नमस्कार करके, शास्त्रों को पढ़कर के, पापियों की  
 संगति छोड़कर के, सुपात्र में धनदान देकर के सम्मान जाने  
 वाले महात्माश्रा के माग पर जाकर के अन्त शत्रुओं को जीत  
 कर के पञ्चपरमेष्ठी नमस्कार मन्त्र को करके, वाञ्छित सुख को  
 हथेली में स्थित करो ॥ ६५ ॥

हरिणोवृत

प्रसरति यथा कोटिदिक्षु क्षपाकरसोदरा—  
 भ्युदयजननी याति स्कीति, यथा गुणसन्ततिः ।  
 कलयति यथा वृद्धिं धर्मं कुकर्महतिक्षमं,  
 मुलभगुशले न्याय्ये तार्यं तथा पथि वर्तनम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—सज्जनो को चाहिये कि कल्याण से नुप्राप्य नीति के मार्ग पर उस तरह चलना चाहिये जिससे चन्द्रमा के समान उज्ज्वल चारों दिशाओं में फैलता है, तथा उन्नति का कारण ऐसी गुणधर्मों का विकास को प्राप्त होती है और दुष्कर्मों को दूर करने में समर्थ ऐसा पुण्य बढ़ता है ॥ ६६ ॥

## महापुरुषों के आभूषण

गिरिरिणीवृत्त

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणमनं,  
मुखे सत्या वारणो श्रुतमविगतं च श्रवणयोः ।  
हृदि स्वच्छावृत्तिर्विजयि भुजयोः पौरुषमहो,  
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ॥ ६७ ॥

अर्थ—अहो ! यह आश्चर्य की बात है कि विना धन संपत्ति के भी स्वभाव से ही महान् आत्मा वाले पुरुषों का यह नीचे लिखा हुआ वर्णन श्रुतगार है तथा हाथों में तो प्रशंसनीय दान देने की प्रवृत्ति है । मस्तक पर ( मुकुट की जगह ) बड़े

लोगों को प्रणाम करने की प्रवृत्ति है, मुख में 'स्वर्ण' की लिकामों के स्थान पर सच बोलने की प्रवृत्ति है, कानों में कुण्डलों की एवज में शास्त्र सुनने की प्रवृत्ति है, हृदय में हार के बदले में 'निर्मल भावना' है तथा भुजाओं पर भुजबन्द की जगह जयश्रील पुरुषाय है । ये महात्माओं के सच्चे आभूषण हैं ॥ ६७ ॥

## विषयत्याग

शिररिणीवृत्तः

भवारण्य मुक्त्वा यदि जिगमिषुमुं क्तिनगरी,  
तदानीं माकार्षीं विषयविषयवृक्षेषु वसतिम् ।  
यतश्चायाप्येषा प्रथयति महामोहमचिरा-  
दय जन्तुयस्मात्पदमपि न गन्तु प्रभवति ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे भविष्यजन ! अगर तू ससार रूपी गहन वन को छोड़कर माक्षनगर या जागे की इच्छा वाला है तो इन्द्रिय भागरूपी जहरीले पेड़ों पर मुकाम मत कर क्योंकि यह विषया की छाया भी जन्मे में ही भयकर मूच्छा या 'फनाती' है और



जिससे यह प्राणी एक पैर भी आगे चलने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ६८ ॥

अथ कर्ता का नाम और इस ग्रंथ के उपदेश का फल—

उपजातिवृत्त

सोमप्रभाचार्यमभा च लोके, वस्तुप्रकाशं कुरुते यथाशु ।  
तथायमुच्चैः स्पदेशलेगः, शुभोत्सवज्ञानगुणांस्तनोति । ६९ ।

अर्थ—जिस तरह शोध ही ससार में चन्द्रमा की कान्ति और सूर्य की कान्ति प्रत्येक वस्तु को दिखाती है । तथा वैसे ही या थोड़ा सा उपदेश बड़े २ अच्छे २ कल्याणकारी ज्ञान गुणों को हृदय में विस्तृत करता है । इस में कवि ने अपना नाम सोमप्रभाचार्य यह भी प्रकट कर दिया है ॥ ६९ ॥

---

प्रशस्ति

मालिनीवृत्त

अभजदजितदेवाचार्यपट्टोदयाद्रि—

द्युमणिविजयसिंहाचार्यपादारविन्दे ।

मधुकरसमता यस्तेन सोमप्रभेण  
व्यरचि मुनिपनेना सूक्तिमुक्तावलीयम् ॥ १०० ॥

अथ—जो श्री अजितदेव आचार्य से पट्ट आसन रूप सुमेरु  
पहाड़ पर सूय के जसे विजसिंह आचार्य के चरण कमलो में  
भ्रमर भाव को सेवते थे । उन मुनियों के माय सोमप्रभाचार्य  
ने यह सुक्ति रूप मोतियों की माला बनाई है ॥ १०० ॥



प्राप्ति स्थान :

२. श्री गोविन्दचन्द मेहता

गृहपति

श्री श्वेताम्बर जैन छात्रावास

मु० पो० गुढावालोतान

स्टेशन जवाईवाघ (राज०)

